ISSN : 2321-3922
अक्टूबर–2015

संभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.sambhavya.net

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

ISSN - 2321-3922

संभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

अक्टूबर–2015

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संयोजक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संरक्षक
श्री मती प्रतिभा सिन्हा

सम्पादक
डॉ. अश्विनी
डॉ. जी.पी. सिंह

संस्थापक सदस्य
डॉ. राम किशोर शर्मा
श्री उमाकान्त भारती
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता

विशिष्ट सदस्य
श्री अजय कुमार सिंह
श्री धनञ्जय प्रसाद मण्डल 'अजित'
श्री सत्यदेवेश प्रसाद
श्री शिवनन्दन प्रसाद सिंह
श्रीमती छाया पाण्डेय

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303, 09570838880
वेबसाईट : www.sambhavya.net
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

संभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.sambhavya.net

आमंत्रण

'संभाव्य' अंतराष्ट्रीय स्तर की पूर्णतः निःशुल्क हिंदी त्रैमासिक है। वर्तमान समय में विश्व के 40 देशों के पाठक सहित भारत के 84 शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.sambhavya.net पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन को सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि जनवरी–2016 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ मेल करें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हँटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

रचनाएं भेजें :–
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com

संपादक
संभाव्य हिन्दी त्रैमासिक

ISSN - 2321-3922

अनुक्रम

1	पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	5
2	आलेख	आनंद शंकर माधवन सुधियों के चंदन वन में	प्रो० : मृत्युंजय उपाध्याय	6
3	गजल	याद आ जाती है...	देव नाथ द्विवेदी	9
4	समीक्षा	अँधेरे से बाहर उम्मीद और रौशनी की कवितायें	विनोद कुमार	10
5	कहानी	भरोसा टूटने का दु:ख	डॉ0 सुजाता चौधरी	13
6	गजल	आपने जो मुझको...	शुभम श्रीवास्तव 'ओम'	15
7	कविता	एक नये व्याकरण की जीत	श्वेता भारती	16
8	कविता	शेर सा मैं भी गरजना जानता हूँ	डॉ0 अश्विनी	16
9	सम्मान सूची	संभाव्य दिवस समारोह–2015	संस्थापक	17
10	कविता	पुरानी डायरी	अनुपमा सरकार	18
11	लघुशोध	हिन्दी की विशिष्ट संबोधन शब्दावली: एक सम्यक् अध्ययन	छोटेलाल गुप्ता	19
12	आलेख	वन तुलसी गंध की तरह.... 'रेणु'	डॉ0 अनुज प्रभात	23
13	समीक्षा	कहानी संग्रह : डॉ० सुजाता	दयानन्द जायसवाल	25
14	आलेख	संयोग या नियति का खेल	डॉ0 आनंद प्रकाश	27
15	आलेख	अंबेडकर के अर्थशास्त्री विचार	डा. शरद रंजन त्यागी	30
16	कविता, कहानी	इंतजार रब का–18, एक सर्द दिन, तुम्हारे बिन (कहानी)	सीमा'असीम'	31
17	कहानी	पहली खेप	डॉ0 प्रेमचन्द पाण्डेय	35
18	कविता	बाल गीत	कृपाशंकर शर्मा 'अचूक'	38
19	कविता	वो तिलचट्टे	आशा पाण्डेय ओझा	39
20	लघुकथा	आओ कहें, दिल की बात	क़ैस जौनपुरी	40
21	कविता	अच्छा लगता है	सच्चिदा नंद 'इंसान'	41
22	कविता	प्रार्थना	उमाकांत झा 'अंशुमाली'	41
23	कविता	केंचुवे और साँप	अखिलेश चन्द्र श्रीवास्तव	42
24	कविता	शब्द	सुरेन्द्र कुमार शर्मा	42
25	कविता	मसूरी – रविशंकर सिंह, कविता और कवि –	सुशील कुमार श्रीवास्तव	43
26	कविता	फ़रिश्ता	विजय कुमार सप्पति	44
27	लघुकथा	मिट्ठू, घड़याली आँसू	रीता वर्मा	45
28	लोकवाणी			46

अंतरा

भीतर रोना, बाहर हँसना, संगिनि, जान गया हूँ मैं
तरूण तपस्वी, तरूण विलासी
जग का मैं ऐसा पुरवासी
बाहर कैसे भेद खुले रे ?
मन-भीतर मेरा विश्वासी

बादल काले ही होते हैं, संगिनी, मान गया हूँ मैं।
नाच गईं काँटों में मीरा
झूम-झूम गा गए कबीरा;
जग बदला मेरी बारी में
गंगा बनी गहन-गंभीरा

इतना है कि प्रेम की वाणी अब पहचान गया हूँ मैं।

गोपाल सिंह नेपाली

पुरोवाक्

संस्थापक की कलम से

जीवन का असली रोमांच बुरी परिस्थितियों से लड़कर अपनी मंजिल को हासिल करता है। जब हमारा लक्ष्य हमारी उपलब्धियों से ज्यादा उँचा होगा और उन्हें हासिल करते हुए अपना लक्ष्य निरंतर बढ़ते जायेंगे, तभी हम नई मंजिल को हासिल कर पाएँगे। जिस नाविक को यह मालूम न हो कि उसे किस दिशा में जाना है, उसके लिए हवा का कोई रूख सटीक नहीं होता। यह सच है कि दूसरों को समझना एक ऐसा कौशल है, जो हर एक के पास नहीं होता। अक्सर हम वही बात समझते हैं, जिसे सुनना पसन्द करते हैं। यानी आपसी समझ की कमी का मूलकारण यदि कुछ है, तो वह स्वयं हमारा पूर्वाग्रही स्वभाव है।

आज धर्म की हमारे समाज में गहरी जड़ें हैं। लेकिन समय के साथ इनकी भूमिका बदलती और उलझती चली गई है। समाज में और लोगों के निजी जीवन में धर्म के नाम पर जो चीज उपस्थित है, उसका प्रायः आध्यात्मिकता से उतना रिश्ता नहीं है, जितना किन्हीं और चीजों से; जिनका वस्तुतः धर्म से कोई लेना–देना नहीं है। व्यक्ति के जीवन में धर्म की आध्यात्मिक भूमिका खो सी गई है और वह सामाजिक जड़ता का जरिया बन गया है। साहित्य और साहित्यकार इन श्रोतों की गहरी पड़ताल करते हैं, जिनसे बुरी खबरें पैदा होती है। वह उस व्यवस्था को बेनकाव करते हैं, जिनका सर्वोपरि मूल्य शोषण और अत्याचार है। वह वर्तमान की गहरी निराशा को उजागर करते हैं। सारे विपर्ययों और क्षरणों को इसलिए उजागर करते हैं कि उन्हें 'विश्वग्राम' की चिन्ता है कि कैसे मानव बेहतर समाज में खुशनुमा सांस ले सके। प्रेम, प्रकृति, सौन्दर्य आदि के साथ अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं और सामाजिक सरोकारों को इन्होंने अपना विषय बनाया है। इनके मूल स्वर में जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण रहा करता है। आप गीता पढें, बाईबिल पढें, कुरान पढें या अन्य कोई भी धार्मिक ग्रन्थ पढें; सबने प्रेम और अहिंसा की सीख दी है। इंसानियत से बड़ा कोई मजहब नहीं है। कोई भी मजहब हमें दूसरों से नफरत की इज़ाज़त नहीं देता। अगर लोग दूसरे धर्म के बारे में भी पढ़ना शुरु कर दें, तो यकीनन मानिए कि दुनिया में धार्मिक नफरत का निशान नहीं बचेगा।

हर कोई आदमी की तलाश करते हैं और ढूँढते हैं कहाँ गया वो फरिश्ता? कहाँ गयी वो मानवता? कहाँ गयी मनुष्यता? लगता है आज यह लुप्तप्राय है। इन्हीं स्थितियों के बीच महान दार्शनिक डॉ० राधाकृष्णन की ये पंक्तियाँ याद आती हैं– ''हमने पक्षियों की तरह उड़ना और मछलियों की तरह तैरना तो सीख लिया है, पर मनुष्य की तरह पृथ्वी पर चलना और जीना नहीं सीखा।'' राजनीति में भी नैतिकता और मर्यादा की कोई मान्य कसौटी नहीं है। ऐसी कुछ कसौटियाँ तो राजनीति परम्पराओं व बड़े नेताओं के आचरण से बनती है। किन्तु कुछ बनती भी है तो तोड़ दी जाती है। संवेदन हीनता, अवसरवाद और मिथ्या प्रदर्शन राजनीति की पहचान बनते जा रहे हैं। लेकिन साहित्यकार आज भी अपने धर्मों पर चलते हुए उत्पीड़ित समाज में प्रतिरोध की चेतना को जागृत करने में लगे हैं। वैश्वीकरण, नवसाम्राज्यवाद, कार्पोरेट संस्कृति, बाजारवाद के विरूद्ध संघर्ष की प्रक्रिया को निरंतर लिपिबद्ध कर जनसामान्य की चेतना को यथार्थ परक बनाते हैं। इन रचनाकारों में जीवन का राग और खुरदरी ज़मीन पर नंगे पाँव चलने का एहसास है। रचनाओं में संवेदना, उभरती जीवन–दृष्टि, वर्तमान एवं भविष्य की दिशा तथा नैसर्गिक आकर्षण हैं जो आप सबों को प्रभावित किये बिना नहीं रह पाते।

मानव मूल्यों की अनिवार्यता का उद्घोष करती यह 'संभाव्य'' पत्रिका उपेक्षित समुदाय की वेदना, जीवन स्थिति का चित्रण, व्यवस्था की क्रूरता, राजनीति का विचलन, आधुनिकता और तकनीक की संवेदन हीनता अथवा यांत्रिकता हो या विचारों के मनोजगत का द्वन्द्व, कहानी, कविता, गज़ल, गीत, समीक्षा, संस्मरण, यात्रावृतान्त आदि के द्वारा इन सभी क्षेत्रों–प्रसंगों के यथार्थ को उद्धाटित करते समय अपनी सर्जनात्मक प्राथमिकताओं को आँखों से ओझल होने नहीं देती।

सहज भाषा द्वारा यथार्थ की गहरी समझ से संवेदना को मर्म तक पहुँचाने में जो जद्दोजहद हमारे रचनाकारों द्वारा की जाती है वह पाठकों की थिरकती खुशियाँ बता रही हैं।

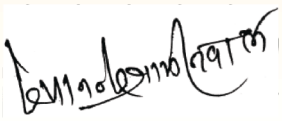

कहानी

पहाड़ों पर नर्म धूप

नीरजा हेमेन्द्र
न्यू हैदराबाद, लखनऊ–07
मो०–9450362276

मेरी आँखें उसे ढूँढ रही थीं। उसे कहीं न पा कर मेरी व्याकुलता बढ़ती जा रही थी। न जाने क्यों? मैं उसे ठीक से जानता तक नहीं। उसे ठीक से जानना तो दूर, अभी उसका नाम तक नहीं जानता, फिर भी उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। मैंने कलाई–घड़ी पर दृष्टि डाली, नौ बज रहे थे। मैं समय से आधे घंटे पूर्व ही कार्यालय आ गया था। कार्यालय के बाहरी कक्ष में जो कि स्टाफ रूम है, वहाँ बैठ कर उसकी प्रतीक्षा करने लगा। इस समय एक–एक क्षण व्यतीत करना दुरूह लग रहा था, अतः स्टाफ रूम से बाहर निकल कर लॉबी में आ गया। लॉबी में खड़े हो कर मैं चारों तरफ देखने लगा। यह लेह शहर मैं पहली बार आया हूँ। दूर–दूर तक पहाड़ों की छोटी–बड़ी श्रृंखलायें, इन विस्तृत श्रृंखलाओं के मध्य स्थित समतल घाटी में बसा प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर यह छोटा–सा खूबसूरत शहर लेह। मैं यहाँ खड़े होकर प्रकृति के अद्‌भुत सौन्दर्य को भरपूर दृष्टि से देख ही रहा था कि मेरे पूरे शरीर में ठंड की वजह से सिहरन होने लगी।

ठंड के कारण यहाँ रूक पाना मुश्किल हो रहा था, मैं अन्दर जाने की सोच ही रहा था कि सामने की पथरीली सड़क से वह पैदल आती दिखाई दी। बर्फीली हवाओं से बचने के लिए वह बार–बार अपना स्कार्फ ठीक कर रही थी। सड़क के दोनों तरफ फैले पथरीले मैदानों में उगे चीड़ व देवदार के ऊँचे वृक्षों के पत्ते भी मानों ठंड से काँप कर सिहरे जा रहे थे। इस सर्द मौसम में वह मुझे किसी ऊष्मा से कम प्रतीत नहीं हो रही थी।

मेरे हाथ–पैर ठंड की वजह से काँपने लगे थे। मैं लॉबी पार करता हुआ कार्यालय कक्ष में आ कर कुर्सी पर बैठ गया। कमरे में जल रहे हीटर के कारण कमरा बाहर की अपेक्षा गर्म था। यहाँ मुझे ठीक लगा। मैं मेज पर रखी फाईलों को उठा कर पलटने लगा। किन्तु मन ही मन मैं उसकी प्रतीक्षा भी कर रहा था। मैं जानता था कि यहाँ आने के पश्चात् वह सीधे मेरे कक्ष में ही आएगी। उसके सीधे मेरे कक्ष में आने का कारण यह था कि वो मेरी पर्सनल सेक्रेटरी थी। इस कार्यालय में काम करने वाले कर्मचारियों की उपस्थिति पंजी को उठा कर मैं देखने लगा। मैंने अभी कल ही यहाँ ज्वाइन किया है अतः मुझे यहाँ कार्यरत किसी भी कर्मचारी का नाम नहीं ज्ञात है। रजिस्टर देखने का एक कारण यह भी था कि मुझे उसका नाम जानने की भी उत्सुकता थी। कल सभी सहकर्मियों से परिचय तो हुआ पर मैं उसका नाम नहीं जान पाया। अब इस रजिस्टर से उसका नाम ज्ञात हुआ कि मेरी पर्सनल सेक्रेटरी का नाम शिवांगो है।

कुछ ही देर बाद वो मेरे कक्ष में दाखिल हुई। उसने मुस्कुराते हुए मेरा अभिवादन किया। मैं उसके अभिवादन का प्रत्युत्तर देना भूल कर उसके चेहरे की खूबसूरती में विलीन–सा हो गया। वो प्रत्युत्तर की आशा में कुछ क्षण मेरी ओर देखती रही तत्पश्चात् कार्यालय के कार्यों में व्यस्त हो गयी।

मैं यहाँ लेह के आकाशवाणी केन्द्र में लखनऊ से स्थानानान्तरण के पश्चात् कल ही आया हूँ। लेह की कठोर ठंड मैदानी क्षेत्र के लोगों के लिए कष्टप्रद होती है। अतः कोई यहाँ आना नहीं चाहता। किन्तु नौकरी की कुछ विवशताएँ भी होती है। जिनके कारण हमें दुरूह क्षेत्रों में भी स्थानान्तरित होना ही पड़ता है। मैं दो वर्ष के लिए यहाँ आया हूँ। इसमें समय–समय पर हमें कुछ अवधि का अवकाश भी मिलेगा ताकि हम अपने परिवार के पास जा सकें।

यहाँ ठंड होती है ये तो मैं जानता था पर यहाँ की इतनी कठोर ठंड से अनभिज्ञ था। पहली बार ही तो मैं इस शहर में आया हूँ। जो दैनन्दिनी कार्य हम मैदानों में रहने वाले लोग ठंड में भी सरलता से कर लेते हैं जैसे ब्रश करना, मुँह धोना, नहाना आदि पानी से होने वाले वो सभी कार्य मुझे प्रथम दिन ही अत्यन्त दुरूह लगे। खान–पान में भिन्नता तथा दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं की कम अथवा दोगुनी कीमत पर उपलब्धता भी हमें यहाँ दिख रही थी। आज प्रथम दिन ही कार्यालय आया तथा आज ही सोचने लगा कि कैसे ये दो वर्ष व्यतीत होंगे? मन में शीघ्र लखनऊ वापस जाने का विचार प्रवल होने लगा।

शिवांगो मेरी मेज के समीप खड़ी थी। उसके हाथों में फाईलें थी। मैंने लखनऊ वापस जाने के विचारों पर विराम लगाते हुए इस समय कार्यालय के कार्यों में ध्यान लगाना ही उचित समझा। मैंने शिवांगो को अपने सामने की कुर्सी पर बैठने का संकेत किया। मुझे यह ठीक नहीं लगा कि वह मेरे समक्ष खड़ी रह कर कार्यालय के कार्यों का निस्तारण कराये। वह मुस्कुराती हुई थोड़ी झिझक के साथ मेरे सामने बैठ गयी। शिवांगो आज भी उतनी ही आर्कषक लग रही लग रही थी जितनी कल लगी थी। पारदर्शी गोरा रंग, पतली गुलाबी

होंठ, लेह के मूल निवासियों–सी खूबसूरत आँखें व नाक। सब कुछ आर्कषक। साधारण ढंग से बँधा रेशम से चमकीले, सुनहरे बालों का पोनीटेल उसके सौन्दर्य को और बढ़ा रहा था। कार्यालय के कार्य करते–करते बीच–बीच में मैं उसे देख भी ले रहा था। सचमुच शिवांगो बहुत खूबसूरत थी।

विपरीत प्राकृतिक वातावरण में रहते हुए मुझे एक सप्ताह हो गये। धीरे–धीरे शिवांगो मुझसे खुलने लगी थी, किन्तु बहुत नहीं मात्र औपचारिकता तक। उसने मुझे बताया कि उसका घर इस कार्यालय से करीब आधा कि०मी० दूर उस कस्बाई बाजार में है जो यहाँ से दिखता है। वह घर से पैदल ही कार्यालय आती–जाती है। मेरे साथ यहाँ आये मेरे तीन अन्य सहकर्मी एक माह पश्चात् मिलने वाले अवकाश में घर जाने की, पत्नी–बच्चों से मिलने की चर्चाओं व तैयारियों में व्यस्त थे। किन्तु मैं... मेरे यहाँ रूकने अथवा शीघ्र लखनऊ जाने की कोई वहज नहीं है। मैं अविवाहित हूँ। मेरे उम्रदराज माता–पिता मेरे विवाह की चिन्ता में अपने दिन व्यतीत कर रहे हैं। ऐसा नहीं कि मेरी अभी विवाह की उम्र नहीं हुई है बल्कि मेरे विवाह की उम्र अब निकलती जा रही है। मैंने अब तक न जाने विवाह क्यों नहीं किया? मेरे माता–पिता के अनुसार मुझे कोई लड़की पसन्द ही नहीं आती।

घर जाने की मुझे कोई विशेष उत्सुकता नहीं थी अपने अन्य सहकर्मियों की भाँति किन्तु लेह का बर्फीला सर्द मौसम मुझे परेशान–सा कर रहा था, अन्यथा अन्य कोई कारण नहीं था मेरे लखनऊ जाने का।

मेरे दिन कार्यालय के कार्यों में व्यतीत होते जा रहे थे... जब शिवांगो मेरे इर्द–गिर्द रहती और मैं उसके सौन्दर्य में खोया–सा तो शनैः शनैः मुझे शिवांगो की आदत–सी हो गई। कार्यालय पहुँच कर मैं उसकी प्रतीक्षा करने लगता। उसके घर से कार्यालय आने वाली सड़क मुझे अच्छी लगती। किसी कारणवश उसके आने में विलम्ब होने पर मैं बाहर सर्द हवाओं में खड़े हो कर उसकी प्रतीक्षा करता तथा मेरी आँखें मार्ग पर उसे ढूँढा करती। उसके दिखाई देने तक लेह की खूबसूरत घाटियों में स्वयं को डुबाये रहता।

शिवांगो अब मेरे साथ थोड़ी–थोड़ी घुलने लगी थी। एक दिन उसे मैंने बता दिया था कि मैं अविवाहित हूँ। मेरी उम्र इस समय चालीस वर्ष की हो रही थी। मैं इस बात से अनभिज्ञ नहीं था कि मेरी विवाह की उम्र निकलती जा रही है। मुझे देख कर कोई भी मेरी उम्र का अनुमान सरलता से लगा सकता था किन्तु शिवांगो को देखकर उसकी उम्र का अनुमान लगाना कठिन था। सरकारी अभिलेखों में दर्ज उसकी बत्तीस वर्ष उम्र मुझे ज्ञात न होती तो मैं यही समझता कि वह इक्कीस–बाईस वर्ष की युवती है।

आज एक माह पूरे हो गए हैं मुझे यहाँ आए हुए। मुझे तथा मेरे साथ आए अन्य तीनों सहकर्मियों को आज घर जाने के लिए एक माह का अवकाश मिल गया। मैं और वो सभी एक साथ लेह से चल चुके हैं। उन्हें अपने शहर भोपाल, मुरादाबाद इत्यादि व मुझे लखनऊ पहुँचना है। लेह से आने के बाद लखनऊ में आज मेरे पास शेष कुछ न था करने को। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे मैं सैकड़ों किलोमीटर दूर लेह में स्वयं को छोड़ आया हूँ शिवांगो के पास।

मैं जो कि लेह में रूकना नहीं चाहता था। अब स्वयं को लेह की स्मृतियों से मुक्त नहीं कर पा रहा हूँ। लखनऊ मुझे अनजाना शहर लगने लगा है। मैं शीघ्र लेह पहुँच जाना चाहता हूँ किन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि ऐसा सम्भव नहीं है। न तो मेरे पास पक्षियों की भाँति पंख है न आवागमन की सरल सुविधा। आगामी माह में लेह जाने हेतु ट्रेन में आरक्षण हो चुका है। तिथि तय है। आजकल बिना आरक्षण के ट्रेन में यात्रा करना सरल नहीं है। विशेषकर दूर की यात्राओं के लिए आरक्षण कर के सफर करना ही बेहतर होता है। दूरभाष द्वारा शिवांगो से कभी–कभी बातें हो जाती हैं। उसके संयमित स्वभाव के कारण बातों का विषय कार्यालय के काम–काज तक ही सीमित रहता है फिर भी उसकी आवाज उसे मेरे पास होने का आभास कराती है।

कभी–कभी मैं सोचता कि क्या शिवांगो के हृदय में भी मेरे लिए ऐसे ही प्रगाढ़ प्रेम की अनुभूति होती होगी जिस प्रकार की अनुभूति मैं करने लगा हूँ। मुझे अपनी ओर देखते–देखते उसके चेहरे पर फैल जाती वो लज्जायुक्त लालिमा तथा यदाकदा उसके होठों पर आ जाती वो स्नेहसिक्त हँसी जो उसके प्रेम को व्यक्त करते थे। शिवांगो भी अवश्य मुझसे प्रेम करने लगी होगी और वो भी इस समय वहाँ मेरी अनुपस्थिति में मुझे स्मरण कर दिन व्यतीत कर रही होगी। शिवांगो ने अपना प्रेम मुझसे भले ही व्यक्त न किया हो, वह भी मुझसे प्रेम अवश्य करती होगी। मैंने निश्चय कर लिया कि इस बार मैं जाऊँगा तो शिवांगो के समक्ष अपना प्रणय प्रकट करूँगा तथा उसके हृदय की भावनाओं को भी स्पष्ट जानने का प्रयत्न करूँगा।

मेरे अवकाश के दिन–रात व दिन–रात के प्रत्येक प्रहर शिवांगो को स्मरण करने में व्यतीत हो गए। छुट्टियाँ समाप्त हो गयी तथा लेह जाने का दिन भी आ गया।

आज मैं लेह जाने वाली ट्रेन में बैठा सुख–दुख मिश्रितभावों की अनुभूति कर रहा हूँ। ऐसा लग रहा है जैसे मैं अपने वृद्ध माता–पिता को छोड़ कर शिवांगो के पास सदा के लिए चला जा रहा हूँ। मन में अजीब सी भावनायें हिलोरे ले रही हैं। कदाचित् यह कोई पीड़ा है? मैंने सुना था कि प्रेम भी पीड़ा देता है तो क्या मेरा यह प्रगाढ़ प्रेम मुझे पीड़ा की अनुभूति भी दे रहा है।

जैसे–जैसे लेह मेरे समीप आता जा रहा है मैं गर्म वातावरण से निकल कर ठंड की सुखद अनुभूति कर रहा हूँ। अन्ततः आज शाम के आठ बजे मैं लेह पहुँच गया हूँ। अपने कक्ष में प्रवेश करते ही मुझे लगा कि मेरा कमरा अत्यन्त ठंडा है, इतना ठंडा कि इसमें रहने की कल्पना मात्र से मेरा मन उद्वेलित होने लगा। एक माह के अन्तराल में मुझे स्मरण ही नहीं रहा कि मुझे कमरे का गर्म करने के लिए आवश्यक उपकरण रूम हीटर को चलाना था। हीटर से कमरा गर्म किए बिना यहाँ रहना अत्यन्त कठिन है। यह सब कर के मैंने अव्यवस्थित कक्ष को थोड़ा–सा व्यवस्थित किया। होटल के रेस्तराँ से भोजन का ऑर्डर दे कर मैं फ्रेश होने बाथरूम में प्रवेश किया। पानी को बर्फ का शक्ल में देख कर इस ठंड में मेरे रोंगटे खड़े हो गए। मैंने बाथरूम में भी विद्युत चालित गर्म प्लेटें ऑन की तथा हाथ मुँह धोकर कमरे में आ गया। मैं इन दैनिक कार्यों में दक्ष होना चाह रहा था। मैं लेह के जीवनचर्या में दक्ष होना चाह रहा था। शीघ्र होने की प्रतीक्षा में कब आँख लगी मुझे ज्ञात

नहीं।

दूसरे दिन मैं समय से पूर्व ही कार्यालय पहुँच गया, पूर्व की भाँति। कक्ष से निकल बरामदे में खड़ा होकर शिवांगो की प्रतीक्षा करने लगा। मेरी दृष्टि बार–बार उस पथ पर उठ जाती जहाँ से शिवांगो को आना था। कुछ ही समय बाद शिवांगो मुझे आती दिखाई दी। वही सौन्दर्य, वही भोलापन उसके चेहरे पर व्याप्त था। मुझे उसकी चाल कुछ सुस्त व धीमी लगी। तो क्या यहाँ शिवांगो भी मेरी कमी को अनुभव कर रही थी। कहीं वह भी तो मुझसे प्रेम नहीं करती? आखिर वह इतनी उदास क्यों है? अनेक अनुत्तरित प्रश्नों के साथ लेह में मेरे दो दिन और व्यतीत हो गए। मैं अपने हृदय की बात शिवांगो से बताने का साहस नहीं जुटा पाया।

आज प्रातः से ही आकाश में मेघों ने डेरा डाल दिया था। उमड़ते–घुमड़ते श्याम बादलों को देख कर भारी बारिश होने की आशंका प्रतीत हो रही थी। मध्यान्ह पश्चात् बादलों ने बरसना प्रारम्भ कर ही दिया। ठंडी हवाएँ कुछ और ठंडी हो चली। शिवांगो ने लौंग कोट के साथ गले में ऊनी स्कार्फ बाँध रखा था। बारिश की इस ऋतु में वह मुझे और आकर्षक लग रही थी। मैं कार्यालय के कार्यों को करते–करते बीच–बीच में दृष्टि बचा कर उसे देख लिया करता था। विगत् एक माह में यह करना स्वभाव में समाहित हो चुका था।

कार्यालय बन्द करने का समय हो गया, किन्तु बारिश बन्द नहीं हुई। बारिश कुछ धीमी हुई तो कार्यालय के लोग अपनी सुविधाओं–साधनों से धीरे–धीरे अपने घरों को जाने लगे। शिवांगो अपने घर से पैदल आती थी, उसे जाना भी पैदल ही था। अतः वह बारिश के रूकने की प्रतीक्षा कर रही थी। मैंने आज तक उसके घर के किसी सदस्य को नहीं देखा था जिससे मैं यह अनुमान लगा सकूँ कि घर से उसे कोई लेने आ जाएगा। मुझे शिवांगो के घर पहुँचने को ले कर चिन्ता होने लगी। धीमी होती बारिश पुनः तेज हो गई। शिवांगो कॉरीडोर में खड़ी तेज होती जा रही बारिश तथा खाली होते जा रहे कार्यालय को चुप–चाप देख रही थी। उसके चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ स्पष्ट होने लगी थीं। तत्काल मुझे युक्ति सूझी मैंने कार्यालय की गाड़ी निकलवायी तथा शिवांगो को बुला कर उसे घर छोड़ने का प्रस्ताव रखा। मौसम के बिगड़ते मिजाज को देख कर उसने वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया व गाड़ी में बैठ गयी।

मैं गाड़ी चला रहा था। शिवांगो मेरी बगल की सीट पर बैठी थी। उसके साथ बारिश में भीगा यह छोटा–सा सफर मुझे भला रहा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे इस शहर को, इस मार्ग को आज मैं प्रथम बार देख रहा हूँ। सब कुछ नया–सा। पथरीले मार्ग में स्थान–स्थान पर बिखरी हरियाली विपरीत परिस्थितियों में ताल–मेल का अनूठा दृश्य उपस्थित कर रही थी। मेरी इच्छा हो रही थी कि शिवांगो के साथ मेरी यह यात्रा इसी प्रकार चलती रहे। शिवांगो विचारमग्न मेरे समीप बैठी थी। मेरा उसकी तरफ बैठना उसे उतना ही अच्छा लग रहा है जितना मुझे। यात्रा सचमुच सुखद थी। मार्ग के दोनों ओर स्थान–स्थान पर प्राकृतिक हरियाली बादलों व पर्वतों के मध्य अन्यन्त आर्कषक लग रही थी।

शिवांगो का भावशून्य चेहरा देख कर मेरे भीतर भी कुछ असामान्य–सा अनुभव होने लगा। मेरे हृदय में शिवांगो के समक्ष अपने प्रेम को प्रकट करने की इच्छा बलवती होने लगी। प्रेम से सिक्त हवायें भी यही संकेत कर रही थीं।

चढ़ते–उतरते मार्गों व भावाभिव्यक्ति के उहापोह के मध्य शिवांगो का घर आ गया। मैंने गाड़ी उसके घर के गेट पर खड़ी कर दी। शिवांगो गाड़ी से उतर गयी। उसने मेरी तरफ देखे बिना ही मुझे अन्दर आने के लिए संकेत किया। मुझे लग रहा था कि वह घर के सदस्यों के समक्ष मुझे ले कर नहीं जाना चाहती है। इसका कारण प्रेम को अभी सबके समक्ष व्यक्त न करने की उसकी इच्छा है या कोई और वजह? मैं अपनी इस सोच पर मन ही मन मुस्करा पड़ा। तत्क्षण मेरे मन में यह विचार भी आया कि मैंने शिवांगो से या शिवांगो ने मुझसे अभी तक अपने प्रेम को शब्दों के माध्यम से व्यक्त ही नहीं किया है।

मैं शिवांगो के पीछे–पीछे चल कर उसके ड्राइंग रूम में आ गया। मुझे अपने ड्राइंग रूम में बैठा कर शिवांगो अन्दर चली गयी। अत्यन्त कलात्मक ढंग से व्यवस्थित छोटे–से ड्राइंग रूम में पर्वतीय कला की साज–सज्जा परिलक्षित हो रही थी। मैं चुपचाप बैठा ड्राइंग रूम की साज–सज्जा को बड़े ही मनोयोग से निहार रहा था कि एक छः सात वर्ष का बालक ड्राइंग रूम में आकर खड़ा हो गया। वह मुझे आश्चर्य से देख रहा था। बच्चा बड़ा ही प्यारा–सा था। बिलकुल शिवांगो की तरह। कुछ क्षण मुझे यूँ ही देखने के पश्चात् वह अन्दर चला गया। मैं सोचने लगा था कि कहीं यह शिवांगो का छोटा भाई तो नहीं है। मुझे शिवांगो के घर के सदस्यों की जानकारी भी नहीं है। अतः मैंने कयास लगाना छोड़ दिया।

कुछ ही देर में शिवांगो मेरे समक्ष खड़ी थी। उसे पीछे वह बच्चा भी था, जो उसके लांग कोट के पीछे कभी छुप जा रहा था, तो कभी प्रकट। शिवांगो के हाथ में ट्रे थी जिसमें चाय के दो प्याले रखे थे। शिवांगो मेरे सामने सोफे पर बैठ गयी व शालीनता से मुस्कुराते हुए एक प्याला मेरी ओर बढ़ा दिया। वह बच्चा भी उसकी बगल में आ कर बैठ गया था। मैं धीरे–धीरे चाय पीने लगा। मैंने सुना था कि पहाड़ो पर रहने वाले चाय बहुत अच्छी बनाते हैं। सचमुच, चाय बहुत अच्छी बनी थी।

कमरे में पसरे सन्नाटे को बाहर हो रही मूसलाधार बारिश की आवाजें तोड़ रही थीं। कमरे में व्याप्त सन्नाटा मुझे अच्छा नहीं लग रहा था। इससे उबरने का प्रयत्न करते हुए मैं शिवांगो से पूछ बैठा, 'घर में कौन–कौन हैं?'

शिवांगो कुछ क्षण खामोश रही, तत्पश्चात् कमरे की खिड़की से दिखाई देने वाले गेट की तरफ देखते हुए बोल पड़ी ''मेरे पापा हैं... बस्स।'' कह कर वह चुप हो गयी।

''वह घर में नहीं हैं क्या?'' मैं पूछ बैठा। हांलाकि यह पूछते हुए मुझे कुछ झिझक–सी हुई कहीं शिवांगो कुछ ग़लत न समझ बैठे।

''नहीं, वह इस समय दुकान में होंगे... उनकी एक छोटी–सी जनरल मर्चेंट की दुकान है... यहीं पर... बाजार में।''रूक–रूक कर उसने बात पूरी की।

मेरी चाय खत्म हो चुकी थी। बाहर पानी का शोर थम नहीं रहा था। मुझे भींगने की कोई चिन्ता नहीं थी, न ही शीघ्र घर जाने की।

मेरे पास कार्यालय की गाड़ी है। मैं आज शिवांगो के बारे में कुछ और जानना चाहता था।

''माँ नहीं है। माँ को गुजरे छः वर्ष को गए हैं।'' बच्चे के सिर पर हाथ फेरते हुए शिवांगो ने कहा।

''ये तुम्हारा छोटा भाई है...।''

''नहीं, यह मेरा बेटा है... चवांग।'' मेरी तरफ स्थिर दृष्टि से देखते हुए शिवांगो ने कहा।

लेह की कठोर ठंड में भी मेरे माथे पर पसीने की बूँदें छलक पड़ी। मेरे भीतर न जाने कैसी व्याकुलता भरती जा रही थी।

मैं बन्द खिड़की के शीशे से बाहर देखने लगा। मुझे ऐसा लगने लगा जैसे कि इस स्थान को चारों तरफ से घेरे ऊँचे पर्वतों के शिखरों की वर्फ पिघल पर मेरे अन्दर बहती जा रही है। काश! यह बर्फीला पानी मेरी आँखों से अश्रु बन कर बह पड़ता, किन्तु नहीं, मेरी भावनायें घनीभूत हो कर मेरे हृदय में भरती जा रही थीं। हृदय पर बढ़ता जा रहा बोझ कैसे हल्का होगा? मैंने सुना है कि यहाँ के फूचे ग्लेशियर से निकलते चश्में का पानी यहाँ के निवासियों को जीवन प्रदान करता है। वो यहाँ का जीवन तत्व है। मेरे जीवन में भी कोई ऐसा श्रोत फूट पड़े जो मुझे कुछ श्वाँस दे सके। मेरे हृदय की स्पन्दन थम–सी रही थी।

मैंने स्वयं को किसी प्रकार संयत किया। अनेक प्रश्न अनुत्तरित सा खड़े देवदार के लम्बे वृक्षों की भाँति मेरे समक्ष खड़े थे। मैं जानता था कि शिवांगो इन प्रश्नों के उत्तर देने के लिए विवश नहीं है। क्योंकि उसने मुझसे प्रेम निवेदन या प्रेम प्रतिज्ञा नहीं की है। मैं भी तो अपनी भावनाओं से उसे अवगत् नहीं करा पाया था। मैं अपनी पुरूष सत्तात्मक सोच से बाहर कब निकल पाया था? उसके द्वारा पहल करने की आशा में मेरा प्रतीक्षारत् रहना मेरी पुरूषवादी सोच का ही तो प्रतीक था।

बाहर बारिश की ध्वनि तेज होती जा रही थी। तापमान हिमांक बिन्दु से काफी नीचे चला गया था किन्तु मेरे भीतर नहीं।

मेरे अन्दर एक उत्सुकता बढ़ती जा रही थी। यह सही थी या नहीं मुझे ज्ञात नहीं। मैं शिवांगो के पति को एक बार देख भर लेना चाहता था। चवांग वहाँ से उठ कर भीतर चला गया था। कमरे में मैं और शिवांगो ही थे। जो साहस मुझे अब से पूर्व का लेना चाहिए था, वो साहस मैं अब करने जा रहा था।

अपनी भावनायें छिपाते हुए मैं शिवांगो से पूछ बैठा, ''तुम्हारे पति दिखाई नहीं दे रहे हैं?''

शिवांगो खामोश थी।

''क्या वो यहाँ नहीं रहते?... बाहर रहते हैं क्या...?'' मैंने कुछ क्षण रूक–रूक कर कई प्रश्न एक साथ जानने चाहे।

मेरे कई प्रश्नों का एक साथ चुन कर शिवांगो ने खामोशी पर विराम लगाते हुए तत्क्षण उत्तर दिया, ''वो हमारे साथ नहीं रहते।''

मुझे ऐसा लगा जैसे शिवांगो को सब कुछ बताने की उतनी ही शीघ्रता है जितनी मुझे जान लेने की।

''क्यों?''

''क्योंकि वह श्रीनगर नहीं छोड़ सकता था और मैं लेह।''

उसकी बातें मुझमें अजीब–सी अनुभूति का संचार कर रही थी। सुखद या कुछ अन्य मैं समझ नहीं पा रहा था।

''विवाहोपरान्त भी तुम्हारी इच्छा नहीं हुई उसके साथ श्रीनगर जाने की''। न जाने किस लिए मैंने शिवांगो का मन टटोलना चाहा।

''नहीं, पापा को यहाँ अकेला नहीं छोड़ सकती थी। मैं लेह नहीं छोड़ सकती क्योंकि मुझे मैदानों में रहना नहीं आता।'' कुछ क्षण रूक कर शिवांगो ने अपनी बात पूरी की।''

''वह कभी नहीं आता... चवांग से मिलने?'' मैंने पुनः पुछा।

''नहीं, छः वर्ष हो गये... मुझे ठीक से स्मरण नहीं वह कब आया था।''

''वह हमें विस्मृत कर चुका है और हम उसे। ऐसा मैंने स्वेच्छा से किया है। मुझे उससे कोई शिकायत नहीं।'' अपनी बात पूरी कर शिवांगो चुप हो गई।

मैं बारिशों की फुहारों व पानी की संगीत लहरियों से होता हुआ वहाँ से चला आया। मार्ग में गाड़ी चलाते हुए मुझे इस कठोर ठंड में भी ठंड की अनुभूति नहीं हो रही थी। जैसे मैं यहाँ रहने का अभ्यस्त हूँ।

दिन–प्रतिदिन समय के आगे बढ़ते रहने के साथ ही साथ मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा था जैसे मैं शिवांगो के और समीप होता जा रहा हूँ।

मौसम ने करवट ले ली है। पहाड़ों से अठखेलियाँ करते बादलों के पीछे से सूर्य की किरणें छन–छन कर बर्फ के मैदानों को स्वर्णिम कर रही हैं।

मैंने अपने माता–पिता की सहमति से शिवांगो के साथ लेह के एक बौद्ध मठ में बर्फ के फाहे से धवल, पवित्र अपने प्रेम को साक्षी मानते हुए विवाह कर लिया है। मैंने अपने माता–पिता को यह भी बता दिया है कि उनका बेटा भी उनके साथ रहेगा, उनकी बहू कुछ दूर रह कर उनके पास रहेगी।

छः वर्ष बाद

मेरी बेटी सायमा बिलकुल शिवांगो की तरह है। समझदार, शालीन व सुन्दर। वह लखनऊ में अपने भाई चवांग के साथ मेरे पास रहती है। शिवांगो यदाकदा अवकाश के दिनों में हम सबसे मिलने आती रहती है। उसे मैदानों में रहना नहीं आता। सचमुच।

मुझे पर्वतों, घाटियों, बर्फ, देवदार व वहाँ के निवासियों से प्रेम करना आ गया है। क्योंकि मैं स्थानान्तरण के उपरान्त भी लेह आता–जाता रहता हूँ। शिवांगो का सम्पूर्ण प्रेम मैदानों की ओर बहता है, फूचे ग्लेशियर से बहते मीठे चश्में के जीवनदायिनी जल–सा।

कहानी

हृदय का गीत

मनोरंजन सहाय सक्सेना
ए–25, इन्द्रपुरी, लाल कोठी, जयपुर

''जीवन संध्यांगन'' नामक इस अधिकतर राजकीय सेवानिवृत तथा साठ के दशक के पूर्ण कर चुके व्यक्तियों के आवासगृह की जनरल मीटिंग में जब यह पता चला कि किसी व्यक्ति ने दो कमरे और अलग रसोई के स्थान के लिये आवेदन किया है तो परिवार से निष्कासित सभी प्रवासियों ने भगवत स्मरण के साथ चिन्ता व्यक्त की– ''कहीं ऐसा तो नहीं कि कोई चालाक आदमी दोकमरे के इस स्थान को लेकर पहले हफ्ते दो हफ्ते अपनी पत्नी के साथ रहकर बाद में पूरे परिवार को बुलाकर समीप के महानगर में बाहर से आये परिवार की आवास की समस्या का समाधान करके यहाँ लम्बी अवधि के लिये स्थाई पारिवारिक आवास बना ले।'' क्योंकि उसने अलग रसोई के लिये आवेदन किया है जबकि सामान्य तौर पर यहाँ सामूहिक रसोई है जिसमें दो रसोइये आश्रम वासियों का भोजन बनाते हैं।

रसोई की अलग व्यवस्था पर आश्रम वासियों में दल विभाजन हो गया। मगर जब सचिव ने यह कहकर ''यह दो कमरे के साथ अलग रसोई की व्यवस्था यहाँ पूर्ण कालीन मैनेजर के रहने के लिये की गई थी, मगर जब मैनेजर का प्रबन्ध ही नहीं हुआ है, तब तक इस खाली पड़े आवास को किसी आवेदनकर्त्ता को देकर उससे नियमित किराये के रूप में कुछ आय आश्रम के कोष के लिये हो जाती है तो सभी के लिये लाभदायक होगा'' स्वतः आलोचना आपत्ति समाप्त हो गई, क्योंकि सचिव प्रमुख ट्रस्टी के निकटतम थे।

जब आवेदनकर्त्ता अपने सामान के साथ आये तो गोमुखी में हरिनाम की गुप्त माला फेरते वरिष्ठ नागरिकों के माथे पर चिन्ता की रेखायें उभर आई। उन्हें अपनी आशंका स्वतः सिद्ध होती प्रतीत हुई। उनके दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाले सामान में सुविधापूर्ण जीवन हेतु कुछ उपकरण, लिखने की मेज रिवाल्विंग चेयर और दो किताबों से भरी आलमारी थीं। मगर व्यक्तिषः वह अकेले थे। उन्हें अकेला देखकर हमारे आश्रम के आदतन और स्वयंभू नेता सिंह साहब ने बिना परिचय की औपचारिकता के सवाल दाग दिया– ''आप अकेले ही रहेंगे ना।''

''जी,'' उन्होंने बेहद संक्षिप्त उत्तर दिया और मालवाहकों को सामान रखने का निर्देष देते हुये कमरे में जाकर उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि वह अधिक बातचीत करके परिचय आदि की औपचारिकता बढ़ाने के कायल नहीं है।

उन्हें आश्रम में रहते छः माह से कुछ अधिक ही हो गये, मगर उनकी बेहद मितभाषिता के चलते अन्य लोगों के बहुत चाहते हुये भी उनसे किसी की घनिष्ठता नहीं हो सकी। उन्होंने कभी किसी को अधिक बातचीत का अवसर ही नहीं दिया।

बेहद नियमित दिनचर्या थी उनकी। सवेरे छः बजे जब बाकी लोग 'बेड टी' की प्रतीक्षा में हरिस्मरण के साथ महाराज को गाली दे रहे होते, वे प्रातः भ्रमण को निकलते थे। उन्होंने कभी किसी को ''आप भी चल रहें क्या?'' कह कर साथ चलने का निमंत्रण नहीं दिया। आठ से साढ़े आठ बजे तक वह लौटते तो उनके हाथ के थैले में कुछ हरी सब्जियाँ होती। लौटने के बाद शायद पन्द्रह बीस मिनट वह आराम करते। फिर रसोई में जाते, आधा घंटा रसोई में रहकर नाश्ता तैयार करते और अपने कमरे में चले जाते। कमरे का द्वार वह बन्द ही रखते थे। ग्यारह बजे के बाद उनके कमरे का द्वार खुलता, वह फिर रसोई में जाते, इस बार वह लगभग एक घंटा रसोई में रहते थे फिर एक ढकी हुई थाली में अपना पकाया हुआ भोजन लेकर कमरे में चले जाते। कमरे का द्वार फिर बन्द हो जाता। दो बजे के करीब कमरे की खिड़की और रोशनदान से कमरे में टेबुल लैम्प के प्रकाश का आभास होता था जो शाम सूर्यास्त तक दिखाई पड़ता था।

सूर्यास्त होते ही वह प्रकाश बुझ जाता, तब वह अपने कमरे में दीप प्रज्वलित करते उसके बाद कमरे में सामान्य प्रकाश रहता था।

तब आश्रम के अन्य लोगों को एक मुद्दा मिल गया था उनसे बात करने या विरोध करने का। दिन में बिजली जलाये रखने पर आश्रम के बिजली के बिल का भुगतान सामूहिक होने के कारण सभी को अनावश्यक अधिक अंशदान की चर्चा हुई तो उन्होंने तीसरे ही दिन एक इलेक्ट्रीशियन को बुलाकर अपने कमरे में अलग से सब मीटर लगवा कर उस चर्चा को तुरन्त विराम देकर यह सिद्ध कर दिया कि वह समस्या के समाधान में विश्वास रखते है व्यर्थ चर्चा में नहीं। यह शुरूआत के पन्द्रह बीस दिन की बात है।

रात को आठ बजे वह आश्रम के मंदिर के प्रांगण में शयन आरती के पूर्व हरिकीर्त्तन में नियमित रूप से तथा पूर्ण भक्ति भाव से सम्मिलित होते थे। उनके आगमन से पूर्व यदि किसी धार्मिक व्यक्ति या विषय को लेकर कोई गर्म चर्चा या विवाद चल रहा होता तो वह विनम्रता पूर्वक सुझाव देते– ''देखिये धर्म व्यक्ति की बिलकुल वैयक्तिक मान्यता का विषय है। इस पर बहस नहीं हो यही अच्छा है। **धारियते इतिः धर्मः** के अनुसार व्यक्ति जिस आचरण को जीवन में स्वीकार कर लेता है वही उसका धर्म बना जाता है और धर्म में तर्क का स्थान ही नहीं होता। जहाँ तर्क है वहाँ धर्म स्थापित ही नहीं होगा, इसलिये इस विवाद का समापन कर हरि कीर्त्तन करें तो उचित होगा।'' उनके इस प्रबोधन पर कुछ लोग स्पष्ट सा कुड़कुड़ाते तो रहते, मगर सामान्यतया विवाद का समापन हो जाता था, अथवा वह स्वयं प्रांगण के एक कोने में सबसे अलग बैठकर प्रभु आराधना में लीन हो जाते थे।

कीर्त्तन में उनका स्वर सुनकर सबको लगता था कि केवल

उनका स्वर ही मधुर नहीं है बल्कि उन्हें संगीत का अच्छा ज्ञान भी है और विगत में वह अच्छे गायक भी रहे होंगे। मगर जब भी उनसे गायन का आग्रह किया जाता तो वह विनम्रता से कह देते थे– ''देखिये स्वर ईश्वर प्रदत्त है और गायन का प्रस्तुतीकरण अभ्यास प्रदत्त। स्वर के आरोह और अवरोह का प्रयास अभ्यास की कमी और बढ़ती आयु के कारण हो नहीं सकता फिर गायन का अपमान क्यों करूँ? और बात को टाल जाते थे।

अब ज्यादातर लोगों ने उनके विषय में यह धारणा बना ली थी कि वह एक नकचढ़े किस्म में एरिस्ट्रोक्रेट, ऐरोगेण्ट वगैरह गुणों से पूर्ण व्यक्ति है जिन्हें उनके परिवार ने ही रिजेक्ट कर दिया है, मगर वह एक उच्च पद से सेवानिवृत व्यक्ति है और उनके पास जीवनयापन के लिये पैसे की कमी नहीं है इसलिये परिवार से अलग रह कर अपने परिवारजनों को चिढ़ा रहे हैं।

उनके विषय में लोगों की इस सोच को उस समय धक्का लगा जब आश्रम में स्वयं के परिवार द्वारा निष्कासित गुप्ता जी को दिल का तेज दौरा पड़ा। सबसे पहले उन्होंने ही अपने मोबाईल से फोन करके एम्बुलेन्स को बुलाया, दो आदमियों के साथ लेकर उन्हें हास्पीटल ले गये, उन्हें भर्ती कराया। गुप्ता जी के घर पर किसी ने फोन नहीं उठाया, तो उनके लड़के के ऑफिस में फोन करने पर उसके मित्र ने बताया कि वह तो परिवार सहित किसी विवाहोत्सव में शामिल होने शहर से बाहर गया है, तो दोनों साथ गये लोगों को चेहरे पर हवाईयां उड़ने लगी। इसके बाद जब डाक्टर ने यह पूछा कि मरीज के साथ कौन है, जो भर्ती के फार्म पर हस्ताक्षर करेगा, तो साथ गये दोनों जन एक साथ बोले– ''अरे आश्रम के सेकेट्री को बुलाओ वही करेंगे साइन।'' तब उन्होंने डाक्टर से मरीज के भर्ती का फार्म लेकर हस्ताक्षर कर दिये। डाक्टर ने तुरन्त कुछ आश्यक दवाईयाँ लिखकर दी तो दोनों साथ गये एक बार फिर मुंह ताकने लगे तो उन्होंने अपना पर्स खोला– हजार–हजार के दो नोट निकाल कर बोले– ''आप लोग दवाईयाँ तो लेकर आइये।'' फिर रात को अस्पताल में रूकने का प्रश्न उठा तो साथ गये दोनों अन्य आश्रम वासियों ने अपनी तमाम आयु जन्य बीमारियों का रोना रोते हुये, इच्छा होते हुए भी रूकने में असमर्थता व्यक्त की तो वह बोले– ''रात को मैं रूक रहा हूँ, मगर सुबह आठ बजे तक आप लोग किसी दूसरे व्यक्ति को भेज दें, उसके बाद मेरा रूकना संभव नहीं हो सकेगा।

गुप्ता जी तीन दिन अस्पताल में रहे। इन तीनों रातो को वही अस्पताल में रहे और दवाईयाँ वगैरह का खर्च उन्होंने ही उठाया। चौथे दिन डाक्टर ने कुछ आश्वयक निर्देशों के साथ अस्पताल से गुप्ता जी को छुट्टी दे दी तो उसी शाम को उनके पुत्र और पुत्रवधू अचानक आ पहुंचे। उन्होंने उनका शुक्रिया बड़े रुखेपन से अदा किया फिर पुत्र अपने पिता से बोला– ''आपको सरकार से मेडिकल डायरी मिली हुई है दवाईयाँ आपको फ्री मिलनी थी। उन्होंने आपकी सात आठ हजार की दवाईयाँ बाजार से खरीद ली है अब सरकार तो इनका पुर्नभरण करेगी नहीं इनका पैसा कैसे चुकाया जायेगा। आप अपनी मेडिकल डायरी साथ क्यों नहीं ले गये और आपके साथी बूढ़ों को भी अकल नहीं आई, सभी तो पेंशनर है फिर भी। इसके बाद थोड़ी देर गुप्ता जी के पुत्र और उनके बीच कुछ झिकझिक–चिकचिक होती रही फिर लड़का उनकी पेंशनर्स की मेडिकल डायरी और उनका अथोरिटी लेटर लेकर यह कहते हुये निकला– ''कल शाम को तुम्हारी दवाईयाँ भिजवा दूंगा।''

इसके बाद गुप्ता जी उनके पास गये और बोले– ''मैं आपका पैसा एक हजार रूपये प्रतिमाह के हिसाब से चुका दूंगा।''

उस दिन उन्होंने बड़ा संक्षिप्त सा भाषण दिया था– ''मेरी समझ में आश्रम में एक आपात कालीन कोष होना चाहिये, और उसके लिये मैं अपनी तरफ से पाँच हजार एक साथ जमा करा दूंगा। गुप्ता जी आप जो पैसे मुझे वापिस करना चाह रहे हैं उसी कोष में जमा करते रहें। उनके द्वारा तुरन्त पाँच हजार रूपये निकाल कर सामने रख देने से सबको उनके भविष्य की दृढ़ता का विश्वास हो गया और उसी समय आपातकालीन कोष का गठन हो गया।

अब लोगों ने उनमें कुछ आदर सहित दिलचस्पी लेना शुरू कर दिया। मगर उन्होंने अपने अन्दर किसी को झांकने देने की अनुमति नहीं देने का शायद संकल्प ले लिया था। अब कुछ जिज्ञासु तथा शंकालु लोगों ने उनके बार में एक और रहस्य प्रकट किया कि हर रोज सारा दिन अपने कमरे में बन्द रहने वाले वह बुधवार और शनिवार की दोपहर को बड़े सलीके से कपड़े पहनकर, तैयार होकर कहीं जाते हैं और शाम को ही वापिस आते है हर रविवार को वह सुबह रसोई में देर तक शायद काफी सारे लोगों का खाना बनाते है, टिफिन में भर कर जाते है और शाम को लौटते है इस तरह सप्ताह में दो दिन की दोपहर वह जरूर उनके युवावस्था में रही किन्हीं महिला मित्र वगैरह के साथ बिताते हैं और रविवार को उन्हीं में से किसी के साथ पिकनिक मनाने जाते हैं और उनके इसी चाल चलन के कारण उन्हें परिवार वालों ने घर से अलग कर दिया है।

पहले तो मैंने लोगों की इस तरह की बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया मगर लगातार तीन चार सप्ताह उनकी एक ही दिनचर्या देखकर उस बुधवार को मैंने भी जासूसी का संकल्प ले लिया। वह जैसे ही तैयार होकर बाहर निकले और आश्रम के बाहर ऑटो रिक्शा स्टेण्ड पर पहुँचे मैं भी छिपते हुये उनके पीछे पहुँच गया और वे जैसे ही एक ऑटो में बैठे, मैंने दूसरे ऑटो में बैठकर ऑटोवाले को उनके पीछे चलने को कहा। उनका ऑटो पहले इस नगर के विख्यात गणेश मंदिर पर रूका तो मुझे लगा कि उन्हें शायद शक हो गया है इसलिये मुझे भ्रमित करने को मंदिर आ गये है। फिर एक विचार यह आया कि शायद उनकी हम उम्र महिला मित्र ने मिलने का स्थान सोच समझ कर वतर्ज– ''मैं तुझसे मिलने आई मंदिर जाने के बहाने'' पहले ही यही मंदिर तय कर रखा हो। क्योंकि धर्मलाभ के साथ मंदिर के बाहर एक दुकान के मोदक और एक दुकान की प्याज की कचौड़ी बहुत मशहूर थे।

मैं ऑटो में ही बैठा रहा कि कहीं वह मुझे देख न ले, मगर वह तो पन्द्रह बीस मिनट में ही लौट आये। अब उनके हाथों में दो पॉलिथीन की थैली थी। वह ऑटो रिक्शा में बैठ गये और अब उनका ऑटो एक प्रसिद्ध पब्लिक स्कूल की तरफ दौड़ रहा था। स्कूल के सामने पहुँचकर उनका ऑटो रूका वह ऑटो में ही बैठे रहे। थोड़ी देर में स्कूल की छुट्टी हुई तो वह ऑटो से उतरे और

ऑटो के बाहर आकर खड़े हो गये। कुछ ही देर में एक सात आठ साल का सुन्दर सा बच्चा दौड़ता हुआ आया और– ''अरे! दादू आप आ गये'' कहता हुआ उनकी टांगो से लिपट गया। उन्होंने बच्चे को अपने से चिपकाकर प्यार किया फिर हाथ में थामी हुई थैलियों से एक थैली उसे देकर बोले– ''अबकी बार तुमने मूंग के लड्डू ही लाने को कहा था ना?''

हाँ दादू! आपको याद था। कह कर बच्चा अपनी मन पसंद मिठाई पाकर हर्ष विभोर होकर उनकी ओर देखने लगा। उन्होंने फिर एक बार बच्चे को प्यार किया, फिर उसके स्कूल के ऑटो वाले को बुलाकर बच्चे को बड़े ऐहतियात से उनके हवाले किया। ऑटो में बैठते हुये बच्चा उनसे किसी चीज की फरमाइश करने लगा तो उन्होंने ऑटो को रूकने को कहा, बच्चा शायद यह समझना चाहता था कि उसे क्या चाहिये और वह चीज कहाँ मिलेगी। उन्होंने उसकी बात बड़े ध्यान से सुनी, उसकी बात सुनकर उन्होंने वह चीज लाने का वायदा किया और आकर अपने ऑटो में बैठ गये। अब उनका ऑटो एक और स्कूल की राह पर था और मैं पीछा कर रहा था।

इस बार भी वही हुआ– स्कूल से निकले बच्चों की भीड़ में से एक बच्चा आगे आया और दौड़कर उनसे लिपट कर बोला– ''नानू! आप आ गये। मगर मैं आपसे कट्टी हूँ आप तन्नू को ज्यादा प्यार करते हो तभी तो पहले उसको मिलकर आते हो।'' बच्चे की सहज बाल ईर्ष्या की बात सुनकर वह उसे बड़े प्यार से समझाते हुये ही बोले– ''अरे नहीं बेटे! तुम्हे पता है उसके स्कूल की छुट्टी पहले हो जाती है और फिर वह तुमसे छोटा है, अच्छा देखो, तुमने प्याज की कचौड़ी के लिये कहा था न? इस एल्यूमीनियम फाइल में प्याज की कचौड़ी है घर जाकर ओवन में गरम कर लेना फिर खाना। वैसे अभी ज्यादा देर नहीं हुई है। फिर उन्होंने बच्चे को प्यार किया और उसके स्कूल की बस में बिठाया। बस में बैठते हुये इस बच्चे ने भी उनसे कुछ फरमाइश की, जिसे उन्होंने पहले की तरह ध्यान से सुना, शनिवार को पूरा करने का वादा किया। बस रवाना होने से पहले कण्डक्टर और ड्राईवर ने उन्हें जिस तरह हाथ जोड़कर प्रणाम किया–तो लगा कि वह भी इनसे अनुग्रहीत है।

इसके बाद उनका ऑटो शहर के प्रख्यात हॉस्पीटल के बाहर रूका। मगर अब मुझे उनके पीछे अस्पताल के अन्दर जाने की हिम्मत नहीं हुई, इसलिये आश्रम वापिस आ गया।

दो दिन बीत गये, मैंने किसी से भी इस घटना का जिक्र नहीं किया, मन एक ग्लानि से भर गया, मगर शनिवार को मैं अपने को उनका पीछा करने से नहीं रोक पाया। शनिवार को भी सब उसी तरह घटित हुआ, बस वह मंदिर की जगह बाजार गये। एक जनरल प्रोविजन स्टोर से कुछ चीजे खरीदी, बच्चों से मिले और हॉस्पीटल गये तो मन गहरी ग्लानि से भर गया कि एक और हम जीवन के चौथे आश्रम में सांसारिक बुराईयों का त्याग कर सिर्फ भगवान से लौ लगाने की बाते करते हैं मगर अवसर मिलने पर दूसरे का काल्पनिक चरित्रहनन करने से भी नहीं चूकते।

जीवन– ''सुबह होती है शाम होती है, उम्र यू ही तमाम होती है'' जैसे क्रम में बीत रहा था। अचानक उस दिन मेरी एक मात्र बहन का टेलीफोन पर संदेश मिला कि उसका आस्ट्रेलिया प्रवासी पुत्र विवाह के लिये तैयार हो गया है मगर पुत्र और होने वाली पुत्रवधू दोनों आस्ट्रेलिया से आयेंगे और उन्हें अवकाश की कमी के कारण विवाह के तीसरे दिन ही विदेश वापिस जाना होगा इसलिये पूरा काम चार पांच दिन में ही निपटाना है। इसलिए मैं उनका सहयोग करने तथा पुत्र और पुत्रवधू को आशीर्वाद देने फौरन मुम्बई पहुंच जाऊं। बहन ने यह भी कहा कि मुझे कुछ करने की जरूरत नहीं है, लड़का सिर्फ हमारा आशीर्वाद लेने के लिये भारत आकर विवाह कर रहा है। बहन लड़के के माता पिता के प्रति भक्ति भाव से गद्गद थी मगर मुझे किसी विश्वस्त सूत्र से पता लग चुका था कि पुत्र आस्ट्रेलिया में वहीं की एक सहकर्मी से काफी समय पहले ही शादी कर चुका है तो अब वह यहाँ यह भक्ति भाव माँ बाप की भारी कीमती चल अचल सम्पत्ति से बेदखल नहीं कर दिये जाने के आश्वासन का आशीर्वाद पाने ही विवाह का दिखावा करने आ रहा था। पर मुझे इससे क्या ? बहन खुश है और मुझे मामा का नेम करना है, सो मैं मुम्बई जाने के लिये निकल पड़ा।

मुम्बई जाने के लिये स्टेशन पहुंचा तो प्लेटफार्म पर मुझे वह भी दिखाई पड़ गये। रश्मी दुआ सलाम होने पर लगा कि मुझे वहाँ देखकर और यह जानकर कि मैं मुम्बई जा रहा हूँ वह कुछ दुविधा में पड़ गये। उनके साथ वह दोनों बच्चे भी थे। प्लेटफार्म आने पर जब यह पता चला कि मेरी बर्थ उन्हीं वाले ए.सी. कम्पार्टमेन्ट में है तो उनके चेहरे पर खिन्नता स्पष्ट नजर आने लगी।

गाड़ी शाम छः बजे रवाना हुई बच्चे जब तक जागते रहे धमाल चौकड़ी मचाये रहे और वह बच्चों की हर बात बड़े ध्यान से सुनते, उनकी जिज्ञासा का समाधान करते, दोनों में से किसी के रूठने पर प्यार से मनाते, उनकी फरमाइश सुनते ही पूरी करते, उनके साथ बिलकुल उनके हमजोलियों जैसा ही व्यवहार करते रहे।

रात को दो बजे के लगभग आँख खुली तो देखा मेरी सीट पर पैर रखकर सामने सो रहे एक बच्चे की कम्बल ओढ़ने की कोशिश कर रहे हैं और उनकी इस कोशिश में उनके पैर से मेरी बांह दब जाने के कारण मेरी नींद खुल गई। मैंने हड़बड़ा कर उठने का उपक्रम किया तो उन्हें अपनी गलती का अहसास हुआ, वह बच्चे की कम्बल उठाकर नीचे उतर आये और मुझे हाथ लगाकर बोले– ''भैया जी क्षमा करना, आपकी नींद खराब कर दी।'' कहकर वह अपराधी की तरह सिर झुकाकर खड़े हो गये।

''कोई बात नहीं है, मगर आप सोये नहीं।'' मैंने उनका अपराध बोध कम करने के लिये सांत्वना पूर्ण स्वर में पूछ लिया।

अरे नहीं, कण्डक्टर को कूलिंग कम करने कहा था मगर शायद उसने किया नहीं, मुझे ठंड लगी तो लगा बच्चो को भी ठंड लग रही होगी और इस छोटे को तो ठंड का असर होता भी जल्दी है, इसलिये सोचा देख लूं इसने कम्बल ओढ़ा है या नहीं।'' कहकर वह खामोश हो गये तो मैंने बातचीत करने का अवसर देखकर प्रश्न कर लिया– '' इन बच्चों के माँ बाप... और जान बूझकर वाक्य को अधूरा छोड़ दिया।

अरे नहीं आप ऐसा कुछ मत सोचिये। इनमें से एक मेरा पोता है और दूसरा दोहिता है। दोनों के माँ और बाप दोनो ही सही सलामत है मगर दोनों ही बर्किंग कपल है। बच्चे मुझसे कुछ ज्यादा ही स्नेह रखते है इसलिये इनके स्कूलवेकेशन में इनके कहने पर मुम्बई घूमाने ले जा

रहा हूँ।

''मगर आपका परिवार है यह बच्चे भी आपसे वेपनाह मुहब्बत करते हैं तो फिर आप... मैंने फिर जान बुझकर बात अधूरी छोड़ कर उनकी ओर देखा।

वह थोड़ी देर चुप रहे फिर बोले– ''पता नहीं बच्चे मुझसे वेपनाह मुहब्बत करते हैं या मुझे ही बच्चों का मोह ज्यादा है, मगर मैं बेटे के नालायक होने या ऐसी ही किसी दूसरी घिसीपिटी वजह से आश्रम में रहने नहीं आ गया हूँ। वास्तव में बात यह है कि सरकारी नौकरी से निवृत्ति के तीन साल में मैंने यह महसूस किया कि आज उपभोक्ता वाद से उत्पन्न उपयोगिता वाद के युग में अस्तित्व कायम रखने के लिये अपने को योग्यतम बनाये रखने, साबित करने की प्रतिस्पर्द्धा झेल रही इस वर्तमान युवा पीढ़ी की जिन्दगी की रफ्तार आवश्यकता के अनुसार वक्त से भी बहुत तेज हो गयी है, उसके साथ तालमेल बैठाने के लिये यह जिस तरह की भागमभाग भरी जिन्दगी जी रहे हैं, हम उस तेजी से उनके साथ कदम मिला कर चल नहीं सकते, हमारी क्षमता चुक गई है उनके साथ सामंजस्य बिठा पाने में। अब इस बदली जीवन शैली में जी रहे इस पीढ़ी के युवाओं को अपनी जिन्दगी अपने ढंग से जीने की आजादी तो होना चाहिये जिससे वह कम से कम आपके आदतन और अनाश्वयक हस्तक्षेप के तनाव से वो मुक्त रह सके। परिवार में मेरी पत्नी है उसके मायके में संबंधी के नाम पर उसका एक मात्र भाई है उसके बच्चे विदेश में हैं। दो साल पहले उसे पेरालायसिस हो गया था, तब उसके बच्चे आये थे, इसे साथ ले जाने लगे तो डॉक्टर ने उसके पेसमेकर लगा होने के कारण लम्बी हवाई यात्रा की अनुमति नहीं दी, तब वह इसके लिये एक पूर्णकालीन सेबक की व्यवस्था करके चले गये थे, मगर वेतनभोगी नौकर तो नौकर ही है, इसलिये पत्नी अपने भाई को लेकर बेहद भावुक हो गई थी, सो बीच–बीच में काफी समय के लिये भाई के पास चली जाती थी। वापिस आने के बाद भाई की हालत को लेकर बेहद भावुक और दुखी रहती थी। एक दिन पूजाघर में उसे छिपकर रोते हुये देख लिया, तो मैं खुद ही उसे उसके भाई के पास पहुंचा आया। अपनी पेंशन की आधी रकम दस हजार रूपये हर माह पत्नी को भिजवा देता हूँ जिससे उसे मायके के खर्चे की परेशानी न हो। छः आठ हफ्ते के अन्तराल पर उससे मिल भी आता हूँ। पांच घण्टे की यात्रा है उनके मायके की, इसलिये जल्दी–जल्दी जाना नहीं होता।

पुत्र और पुत्रवधू दोनों सुबह साढ़े आठ बजे भागते दौड़ते घर से निकलते हैं और शाम को सात बजे के बाद जब दोनों घर में घुसते हैं तो दोनों ही बिल्कुल लस्त–पस्त होते हैं उनसे मुलाकात डाइनिंग टेबुल पर ही होती है। इधर मुझे छः माह पूर्व प्रोस्टेटग्लेण्ड में केन्सर के प्रारम्भिक स्टेज का पता चल गया, तो डाक्टर ने सप्ताह में दो दिन रेडियोथेरेपी लेने के लिये अस्पताल में आने को और तेल मसाले वगैरह बन्द करने को और एक खास तरह के मिश्रण के आटे की चपाती खाने को कहा है।

मैंने घर में रहकर महसूस किया कि आज के भागमभाग भरे जीवन में अपने लड़के से यह अपेक्षा करना कि वह मेरे साथ सप्ताह में दो दिन दोपहर में दो तीन घंटे अस्पताल में बिता सकेगा, लड़के को तनाव और भ्रमपूर्ण स्थिति में डालना है और खास तौर पर जब मैं शारीरिक रूप से चलने फिरने में समर्थ हूँ तब इसकी जरूरत भी कहाँ है और दिन भर ऑफिस में व्यस्त रह कर शाम को एक घंटे के ड्राईविंग में जगह–जगह ट्रेफिक जाम वगैरह तमाम अन्य समस्याओं से जूझ कर थकी खीजी हुई बहू से अपने लिये परहेजी खाने के नाम पर ही सब कुछ अलग पकाने के लिये कहना उसे परेशान करना ही है और अगर किसी भी तरह अगर किसी को मेरी बिमारी के बारे में जरा सी भी जानकारी ही गई तो सभी लोग का मानसिक तनाव अनाश्वयक रूप से बढ़ जायेगा। यहाँ सब सोचकर मैंने घर परिवार से अलग होकर इस आश्रम में रहने का निर्णय कर लिया है।

मगर मैं सोच नहीं पा रहा था कि इस संबंध में परिवार वालो से कैसे बात करूं। तभी एक दिन जब सब लोग डाइनिंग टेबिल पर बैठे थे तो पुत्र ने उसके किसी मित्र के पिता द्वारा रिटायरमेण्ट के बाद वृन्दावन के किसी आश्रम में जाकर रहने की बात कही तो मैंने इसका फायदा उठाते हुये कहा– वास्तव में इस आयु में तो अपने समवयस्को के साथ किसी साधु सन्त के सान्निध्य में किसी एकान्त आश्रम जैसी जगह में भगवत भजन ही जीवन की सार्थकता है। मैं भी काफी समय से शहर से बीस किलोमीटर दूर स्वामी मूर्खानन्द के आश्रम जाकर निवास करने की सोच रहा हूँ। इस तरह मुझे तुम लोगों से ज्यादा दूर भी नहीं जाना पड़ेगा और मेरे जीवन का उद्देश्य भी पूरा हो जायेगा। मेरी बात सुनकर पुत्रवधू बोली–''बाबूजी! हम मानते हैं कि हम आपकी वैसी सेवा नहीं कर पा रहे हैं जैसी करनी चाहिये मगर इसका मतलब यह तो नहीं कि आप घर से अलग रहें। आप तो हमेशा कहते थे कि **खलील जिब्रान ने सत्य कहा है कि– ''ईश्वर की भक्ति तो उसके जीवों के बीच में रहकर भी की जा सकती है। भक्ति के लिये एकान्त नहीं चाहिये। प्रार्थना तो हृदय से निकला वह गीत है जो चाहे सहस्त्रों चीख पुकारों से घिरी हुई हो, ईश्वर के कानों तक अवश्य पहुँचेगी।''** फिर यह एकान्त आश्रम में भगवत भजन की बात आप हमसे नाराज होकर ही कर रहे हैं।''

''देखो बेटी! खलील जिब्रान ने जब यह सोच प्रतिवादित किया, उस समय समाज में आज जैसा कोलाहल वातावरण, भागमभाग नहीं थी। अब अपनी कॉलोनी के बाहर सड़क पर ही इतना ट्रैफिक बढ़ गया है कि दोपहर को सोना मुश्किल हो जाता है। तुम्हारी शादी को दस साल हो गये हैं अभी तक तो तुमने कभी नाराज होने का मौका दिया नहीं फिर अब नाराजगी कैसी और यह जरूरी तो नहीं कि मैं वहाँ ही रम जाऊंगा। आता–जाता रहूंगा, तुम लोगों से मिलता जुलता भी रहूंगा, बस यह मानलो कि जिन्दगी में एक नया अनुभव करना चाहता हूँ।

''मगर बाबूजी हम समाज को क्या कहेंगे? लोग तो यही कहेंगे कि हम आपको रिटायरमेण्ट के बाद अपने साथ नहीं रख सके, इसीलिये आप आश्रम में रह रहे हैं। मैं जानता हूँ कि आपका विचार आपका दृढ़ निश्चय होता है, उससे आपको विचलित करना असंभव ही होता है। फिर भी हमारी खातिर आप एक बार फिर से

विचार कर लें।'' पुत्र ने गंभीरता से कहा, मैंने कहा– ''बेटा पहली बात तो यह है कि अगर हम–दूसरे क्या कहेंगे, पर सोच करने लगे तो जिन्दगी वैसे ही दूभर हो जायेगी, क्योंकि लोग तो कुछ न कुछ कहेंगे, आखिर लोगों का काम है कहना, मगर आज समाज के लोगों के पास इतना समय कहाँ है कि वह दूसरों की इतनी चिन्ता करें और वैसे भी जब कोई भी जरूरत हो तो घर आने में एक घंटे से भी कम समय लगेगा मुझे।इस तरह लड़के बहू को समझा बुझाकर मैंने इस आश्रम में प्रवेश पा लिया।

अच्छे पद से रिटायर हुआ, इसलिये अच्छी रकम पेंशन की आती है।रिटायरमेंट पर ग्रेच्युटी और पी.एफ. की बड़ी रमक का बैंक से ब्याज आता है।मेरी 3–4 पुस्तकों की रायल्टी भी हर तिमाही में आ जाती है इस तरह पैसों की कोई समस्या है नहीं।मेरी दोहिता और पोता दोनों ही बचपन से ही मुझसे ज्यादा ही लगाव रखते हैं शायद इसलिये कि मुझे उनकी छोटी–छोटी मामूली मासूम फरमाइशे और कोतुहल पूर्ण बात सुनने में आनन्द आता है, आत्मीयता महसूस होती है।मेरे पास समय है उनकी इन बातों के लिये और मैं इस समय का पूरा उपयोग करता हूँ।

बच्चे अबकी स्कूल वेकेशन में मुम्बई घूमना चाहते थे और दोनों की जिद थी कि वह मुम्बई की लाइफलाईन में जरूर सफर करेंगे, यह देखने के लिये कि वह क्या चीज होती है।मैं जानता था कि इन दोनों के माँ–बाप एक सप्ताह की लम्बी छुट्टी का प्रोग्राम बना ही नहीं पायेंगे और दो तीन की छुट्टी की जैसे तैसे व्यवस्था कर भी लेगें तो हवाई जहाज से लेकर जायेंगे बच्चों को और चाटर्ड प्रोग्राम में बच्चों को मुम्बई की झांकी दिखा कर वापिस ले आयेंगे।बच्चे अगर मुम्बई की पूरी तरह अपनी तरह से देखना चाहते हैं तो उन्हें पूरी स्वतंत्रता से देखने दो ना।

जब आज मां बाप यह कहने में गौरव अनुभव करते हैं कि आज की पीढ़ी के बच्चों का आईक्यू बहुत विकसित हुआ है तो क्यूरोसिटी भी तो बढ़ेगी ही फिर आप उनकी क्यूरोसिटी उनकी जिज्ञासा को पूरी तरह शान्त क्यों नहीं करते? क्योंकि आपके पास समय नहीं है आपके पास खर्च करने को पैसा है गलाकाट स्पर्धा में अपने को साबित करने अपने को बनाये रहने के लिये प्लान है, उन्हें पूरा करने की योजना तनाव है और नहीं पूरा होने की दशा में उसकी असफलता का तनाव है तो बच्चों के लिये आपके पास है क्या? सिर्फ पैसा जिसे खर्च करके आप बच्चों को जरा–जरा सी बात में जता भी देते हो कि आप उसके ऊपर कितना पैसा खर्च कर रहे हो... कहते–कहते वह लगभग हॉफने लगे थे।

मैंने उन्हें थोड़ा पानी पिलाया।वह थोड़ा आश्वस्त हुये फिर बोले ''हमारा बचपन तो पैसे की कमी की वजह से अभावों में बीता, मगर अफसोस है कि आज के बचपन के लिये माँ बाप के पास पैसे का अभाव नहीं है फिर भी इन बच्चों की छोटी–छोटी मामूली और मासूम ख्वाहिशें पूरी नहीं होती।समय की कमी, सामाजिक स्तर की प्रतिष्ठा जैसी तमाम वजह है।इसलिये मैं कोशिश करता हूँ कि इन बच्चों की छोटी–छोटी मासूम और ख्वाहिशे जितनी हो सके पूरी कर सकूं।

किशोरावस्था से ही पढ़ाई के लिये घर परिवार से अलग दूर रहकर पैसे की कमी की वजह से हाथ से खाना बनाने का अभ्यास अब समय बिताने का एक सृजनात्मक शौक बन गया है।इसलिये अपना भोजन खुद बनाता हूँ।इतवार के दिन मैं अपनी कम मसाले वाली सब्जियाँ बनाकर टिफिन में भरकर अपना खाना लेकर और दोनों परिवारों को लेकर बच्चों के साथ कहीं भी पिकनिक पर चला जाता हूँ।इस तरह सप्ताह में एक दिन ही सही परिवार के सभी लोगों के साथ तीन चार घंटे साथ बिताने का अवसर मिल जाता है और इसी तरह सप्ताह में एक दिन मेरे हाथ का बिना मिर्च मसाले का खाना खाकर सभी परिवारी जन एक चेंज एक परिवर्तन महसूस करके प्रसन्न हो जाते हैं।मेरी बेटी तो अब इसी प्रकार का खारा रोज बनाने की बात करने लगी तो मैंने समझाया कि फिर तो रोज–रोज की समरसता, नीरसता बन जायेगी।नयापन नहीं रहेगा।

मगर मुम्बई प्रवास के दौरान आपकी बुधवार और शनिवार की थेरेपी का क्या होगा? मैंने उत्सुकता से पूछा।

''मैंने अपने डाक्टर से मुम्बई के एक केंसर स्पेशियलिस्ट के नाम पत्र लिखवा लिया है उसके यहाँ यह थेरेपी उपलब्ध है और एक सप्ताह में एक ही दिन तो नहीं मिल पायेगी यह थेरेपी, मगर इस सप्ताह में मैं इन बच्चों के साथ रहकर जो संतोष अनुभव करूँगा, जो जीवन से भरपूर जिन्दगी जिऊँगा वह किसी भी थेरेपी से ज्यादा असरदार होगी।'' कहकर वह मौन हो गये।

गाड़ी तेज गति से चल रही थी अचानक एयर कण्डीशन कम्पार्टमेंट की खिड़की के काले काँच पर उदित सूर्य की किरणों का आभास हुआ, तो वह चौककर बोले– ''अरे सवेरा हो गया, मैंने आपको असमय जगाकर आपकी नींद ही खराब नहीं की, आपको सोने भी नहीं दिया।आई.एम.सॉरी सर।वेरी सॉरी।''

नहीं आप ऐसा नहीं कहें, आपने आज मुझे एक नया ज्ञान, जीवन दर्शन, जीवन बोध दिया है, यह अमूल्य है जिसे मैं कभी नहीं भुलूँगा।भगवत् भक्ति के बारे में आपको प्रबोधित उद्धरण– ''प्रभु भक्ति तो हृदय का वह गीत है जो हर हाल में प्रभु के कानो में पहुँचेगा।'' को मैं जीवन में अपनाने का प्रयास करूंगा।आपने मुझे जीवन का –धर्म का एक नया मार्ग दिखाया है, तो आप तो मेरे धर्म गुरू बन गये।'' कहकर मैंने श्रद्धा पूर्वक अपने दोनों हाथ उनके सामने जोड़ दिये।

''अरे नहीं, ऐसा मत कहिये।मैं न तो प्रबोधक हूँ, न धर्म गुरू बनने की क्षमता है मेरे अन्दर! मैंने तो बस किसी दार्शनिक का एक विचार दिया है आपको।'' कहते हुये उन्होंने मेरे दोनों जुड़े हुये हाथों को अपने हाथों में थाम कर विनम्रता पूर्वक अलग–अलग कर दिया, फिर ऊपर की बर्थ पर सोये हुये बच्चों को संभालने में व्यस्त हो गये।

थोड़ी देर में ''तेरे मन्दिर का हूँ दीपक जल रहा'' प्रभु की आराधना हेतु सम्पूर्ण भाव के शब्द मधुर स्वरों में कूपे में गूंजने लगे, तो अगल–बगल के कूपे के लोग उस मधुर कंठ से निकले भक्ति संगीत का प्रसाद पाने को जुटने लगे, वह भाव विभोर होकर गा रहे थे और मुझे उनकी कही गई उक्ति ''प्रार्थना तो हृदय का वह गीत है... का आत्म बोध हो रहा था।

कहानी

थकी हुई सीढ़ियाँ

उमाकांत भारती
भागलपुर
मो०–08935882728

महीनों से पत्नी कटीली झाड़ बन गईं थीं। सेवा निवृति के पच्चीस महीने बाद भी ग्रेच्युटी, कमोडेशन, अवकाश उपादान एवं भविष्य निधि की राशि का भुगतान नहीं हो पाने से जान–पहचान वाले भी उनकी खिल्ली उड़ाने लगे थे।

पत्नी ने भी उन्हें ''भोंदू'' का खिताव दे डाला था।

उनके कार्यालय के मित्र स्नेही जी उनसे एक साल बाद रिटायर हुए थे, उनको छः महीने के अंदर ही ग्रेच्युटी वगैरह के सारे पैसे मिल गए थे।पेंशन भी चालू हो गया था।

अपनी इस कामयाबी पर वे मिठाई लेकर आए थे। ''कुल तीस लाख रूपये मिले। हर माह बीस हजार पेंशन भी मिल रहा है।'' उनके स्वर में अकड़ थी। वे सत्यव्रतजी के एसिस्टेंट थे। दोनों में दोस्ती थी।

''भाई साहब! हमें कितना मिलेगा?''

सावित्री ने स्नेहीजी से अधीर स्वर में पूछा। ''बड़ा बाबू मुझसे सिनियर थे। मुझसे एक हजार अधिक मिलता था इन्हें! इसलिए मुझसे अधिक मिलेगा। दो साल का बकाया पेंशन भी मिलेगा न! सब मिलाकर करीब पैंतीस लाख तो मिलेगा ही।''

सावित्री की आँखों में पैंतीस लाख की खुशी समा गई। ''कब मिलेगा?'' उसकी अधीरता तेजी से पंख फड़फड़ाने लगी। ''बिना घूस दिए थोड़े की काम होता है। हर टेबुल पर चढ़ाना पड़ता है चढ़ावा। सात–आठ हजार का खेल है।... भाभी जी! इनकी ''सर्विस–बुक'' वित्त विभाग में लावारिस–सी पड़ी है। अंतिम वेतन की संपुष्टि होती है वहाँ। इसके बाद ही ग्रेच्युटी और पेंशन वगैरह की प्रक्रिया शुरू होगी।

''मेरा भी करवा दीजिए न! जो लगेगा, दूँगी।''

सावित्री के स्वर में उतावलापन था।

''नहीं... घूस नहीं।''

सत्यव्रत ने कड़ी नजरों से पत्नी को घूरते हुए कड़े स्वर में कहा। स्नेहीजी ने कुछ बोलना उचित नहीं समझा, लेकिन मन कसैला हो गया था। ''कुछ लोग 'शार्ट–कट' रास्ता अपनाते हैं। नैतिकता के वगैर भी खुश होते रहते हैं, लेकिन मैं ऐसा घटिया नहीं।''

सत्यव्रत जी की बातें स्नेहीजी को चुभ गई। वे जाने के लिए उठ खड़े हुए। ''भाई साहब! बैठिये न चाय पीकर जायेगा।'' सावित्री ने माहौल को हल्का करने की गरज से कहा था।... लेकिन वे रूके नहीं।

''मेरे प्यारे अन्ना हजारे जी! खायेंगे क्या? ईमानदारी।''

स्नेहीजी के जाने के बाद वह उनसे उलझ गई।

''कैसी बहकी–बहकी बातें कर रही हैं? समाज सेवी 'अन्ना जी' देशवासियों को भ्रष्टाचार के महादलदल से निकालने की लड़ाई लड़ रहे हैं। मैं उनके पांव की धूल भी नहीं। उनसे मेरी तुलना नहीं कीजिए।''

उन्होंने पत्नी को शांत करने की पूरी कोशिश की, लेकिन वे और भी लहक उठी।

''अन्ना जी आपके आदर्श हैं न।'' घूस नहीं देंगे आप! यही टेक आपका अनमोल खजाना है न! इस टेक से घर का खजाना खाली हो चुका है, लेकिन आपको तनिक भी परवाह नहीं। ऐसी स्थिति में किसी की भी पत्नी का दिमाग खराब हो जाएगा।''

सावित्री रूदन करने लगी थीं। उनकी दशा देखकर सत्यव्रतजी का भी मन आहत हो गया। इतनी कमजोर तो वे नहीं थीं पहले! सर्विस के शुरू के दिनों में वे उनसे कहती थीं– 'किसी को सताकर घूस लेना पाप है लेकिन जो खुशी से दे, उसे ग्रहण करने में कैसा पाप!'

तब उन्होंने उसे समझाया था– 'कोई भी खुशी से नहीं देता घूस! विवश होकर ही देना पड़ता है घूस!'

उन्होंने पत्नी से साफ–साफ कह दिया था– 'अपने आदर्श से मैं कभी भी समझौता नहीं करूँगा।... पत्नी से पति को शक्ति मिलती है। आप मेरी ताकत बनेंगी, तो मुझे अपार खुशी होगी।'

उसी दिन से वे उनके सद्विचार के पथ का पथिक बन गई थीं।

''आज आप इतनी व्याकुल क्यों हो गई?''

''हमारा पैंतीस लाख रूपये फंसे हुए हैं। अगर समय से ये मिल जाते और हम उसे बैंक में फिक्स कर देते, तो अब तक पच्चीस–तीस हजार ब्याज मिल जाता। घूस नहीं देने से हमें कितना घाटा हो रहा। पैसे की भी किल्लत हो गई है।... यू ही हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से पता नहीं कब मिलेंगे रूपए! हमारे जीते जी मिलेंगे भी या नहीं ?

पत्नी के शब्द उनके अंदर तेजाब बनकर उतरता चला गया। इतने बिलंव की उन्होंने भी कल्पना नहीं की थी।

रिटायरमेंट के शुरू के महिनों में उन्होंने कई बार वित्त विभाग जाकर अपनी सर्विस–बुक में मुहर लगवाने का यत्न किया था, लेकिन बिना घूस लिए कर्ल्क ने सीधे मुँह बात भी नहीं की। तब उन्होंने वहाँ जाना छोड़ दिया। सोचा था, हार–पार कर काम करना ही पड़ेगा। आखिर उसकी भी जिम्मेदारी बनती है न!... लेकिन पाँच–छः महीने में भी जब काम नहीं हुआ, तो वे एक बार फिर पता करने वहाँ गए थे।

कर्ल्क चेतन शर्मा ने उन्हें दो दिन बाद बुलाया। दो दिन बाद गए थे। चेतन शर्मा तीन दिनों के अवकाश पर चला गया था। पाँच–सात दिनों के बाद फिर गए।

''दूसरे काम में काफी व्यस्त हूँ। चार–पाँच दिन बाद आइये।''

चेतन शर्मा ने कहा तो उन्हें गुस्सा आ गया। एकबार घर से आने–जाने में दो–तीन सौ रूपये खर्च हो जाते थे। एक हजार तो आने–जाने में ही चला गया। कोई काम भी नहीं हुआ।

''ऐसे ही दौड़ाते हैं यहाँ के बाबू! सब पैसा का खेल है बाबू! जो होशियार होते हैं, वे ले–देकार काम निकलवा लेते हैं।'' चपरासी ने उन्हें समझाते हुए कहा था।

ऐसी बात नहीं कि वे यह सब नहीं जानते थे, लेकिन यही तो वे करना नहीं चाहते थे। ''क्यों बार–बार आते–जाते हैं? अपना मोबाईल नम्बर दे दीजिए। काम हो जाएगा, तो खबर कर दूँगा।''

चेतन शर्मा ने कहा।

उन्होंने अपना मोबाईल नम्बर उसे दे दिया, लेकिन चेतन ने एक बार भी कॉल नहीं किया। तब उन्होंने लिखा–पढी शुरू की। एक–दो महीने के अंतराल पर आवेदन प्रेषित करते रहे।

''मैं तो कहती हूँ... लिखा–पढी से कुछ होने वाला नहीं। दे दीजिए रूपये। फटाफट काम हो जाएगा। जैसे स्नेहीजी का काम हुआ।'' सावित्री ने शांत स्वर में कहा।

''मुझसे यह नहीं होगा।''

''आप अपनी गर्दन सीधी ही रखिए। मैं करवा लूँगी काम। आपसे रूपये भी नहीं मांगूगी। अनुमति दे दीजिए सिर्फ।''

''आप घूस देंगी, तो नाक ही कटेगी न!''

''तब कैसे होगा काम!'' सावित्री ने झुंझलाकर कहा।

''मैं जाऊंगा सचिवालय! करो या मरो।''

सत्यव्रतजी 'महात्मा गाँधी' की तस्वीर के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गए। उनके बगल में 'अन्नाजी' एवं देशभक्तों की तस्वीर थी।

जब भी उनका मन विचलित होता, तो वे इन तस्वीरों के सामने ध्यानमग्न हो जाते थे। इससे उनके मन की शक्ति बढ़ जाती थी।

''मैं भी चलूंगी आपके साथ। घुटने का दर्द बढ़ गया है। बढ़िया डाक्टर से वहाँ मुझे दिखलवा दीजिएगा।'' दर्द तो महज एक बहाना था। मकशद था... अगर वहाँ पतिदेव बखेड़ा कर दें, तो वे स्थिति को संभाल लेंगी।

पेंशन–शाखा एक हॉलनुमा कमरे में था। उसमें करीब बीस कर्ल्क काम कर रहे थे। सभी के टेबुल पर कम्प्यूटर था। चेतन शर्मा कम्प्यूटर पर गेम खेल रहा था। उनके पास चार–पाँच मिनट सत्यव्रतजी और सावित्री खड़े रहे। चेतन शर्मा ने उनलोगों की तरफ देखा भी नहीं।

''गेम ही खेलते रहेंगे या कुछ काम की बातें भी करेंगे?'' सत्यव्रतजी ने कुड़कुड़ाकर कहा।

''पाँच मिनट रूकिए।'' उसने गेम खेलते ही रहा।

''चेतनजी! मेरा काम हुआ या नहीं।''

सत्यव्रतजी के सब्र का बांध टूट गया। उन्हें गुस्सा आ रहा था। फिर भी उन्होंने मधुर स्वर में कहा।

''एक मिनट रूकिये।''

''हम यहाँ गेम देखने नहीं आए हैं। पहले जवाब दीजिए, उसके बाद खेलते रहिए।''

उनका स्वर कड़ा हो गया था।

''बाबा! इस उम्र में गुस्सा ठीक नहीं।''

''आप जैसे लोगों पर गुस्सा करना थोड़ा है। आपके साथ जितना भी अभद्र व्यवहार किया जाए थोड़ा होगा। आप सिर्फ पैसे लेकर काम करते हैं?''

''झूठ बोल रहे हैं आप?''

''अगर यह झूठ है, तो दो साल से मेरी सर्विस–बुक क्यों दबाये हुए हैं? स्नेहीजी मेरे बाद रिटायर हुए थे, लेकिन उनका काम पहले कैसे हो गया? बड़े ही जलील आदमी हैं आप।''

उन्होंने अपने मन का सारा भड़ास एक ही सांस में निकाल दिया। चेतन शर्मा तमसकर उनके सामने खड़ा हो गया।

''ऑफिस से बाहर जाईए। मुझे काम करने दीजिए।''

''आपका काम हम देख ही रहे हैं। इतनी देर से आप काम ही तो कर रहे थे और ऑफिस में मैं गेम खेलने नहीं आया हूँ। चला जाऊँगा, लेकिन काम करवाकर ही जाऊँगा। खाली हाथ नहीं जाऊँगा।''

सत्यव्रतजी इतना कहकर ऑफिस की जमीन पर बैठ गए। उनके पास सावित्री भी बैठ गई।

सूचना

संभाव्य के सभी सुधी पाठकों, रचनाकारों एवं शुभ चिन्तकों का ध्यानाकृष्ट किया जाता है कि सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली के द्वारा जो टाईटल कोड उपलब्ध कराया गया है उसमें 'संभाव्य' टाईटल को 'सुसंभाव्य' नाम दिया गया है। अतएव जनवरी–16 का अंक अब 'सुसंभाव्य' के नाम से आयगा। जिसका टाईटल कोड BIHHIN05394 है।

सधन्यवाद

दयानन्द जायसवाल
संस्थापक/प्रधान संपादक

कहानी

छोटे मालिक

उमाकान्त झा 'अंशुमाली'
भागलपुर
मो०–9472464893

छोटे मालिक की पूरे इलाके में बड़ी धाक थी। धाक क्या, यूँ कहिये कि लोग उनसे भय खाते थे। उनका जन्म हरिनगर के जमिंदार परिवार में हुआ था। जबतक उनके पिताजी थे, लोग उन्हें राजा साहब कहकर बुलाते थे और प्यार से लोगों ने इन्हें छोटे मालिक का नाम दे रखा था। कम ही लोग जानते थे इनका असली नाम किशोर सिंह है। छोटे मालिक की युवावस्था प्राप्त करते–करते एक–एक कर माता–पिता दोनों चल बसे। यों तो छोटे मालिक बचपन से ही दबंग स्वभाव के थे और उन्हें बुरे काम से रोकने की हिम्मत राजा साहब की भी नहीं होती थी। अब तो खैर कोई रोकने वाला रहा ही नहीं। छोटे मालिक अब सारे अवगुणों से भरे हुए एक बिगड़े हुए रईस बन चुके थे।

गोरा दप–दप चेहरा, बड़ी–बड़ी आँखें, करीने से कटी मूंछ और मूंछ के दोनों शिरें मुड़कर ऊपर उठे हुए– देखने वालों की आँखों में भय का संचार करती थी। बगबग उजली धोती पर मलमल का कुरता पहनते और घोड़े की सवारी किया करते थे। बगैर मांस–मछली के उनका कोई भोजन नहीं होता, दूध के ग्लास में नीचे से ऊपर तक छाली न हो तो लाने वाले के मुँह पर ग्लिास फेंक देते थे। बात यहीं तक नहीं आकर रूकती– भोग और विलास उनकी इतनी बड़ी कमजोरी बन चुकी थी कि इलाके की जवान लड़कियाँ डर के मारे घर से बाहर नहीं निकलती और अब तो आये दिन शहरों से कोठेवालियाँ भी मंगाई जाती थी। कुल मिलाकर यह कहा जाए कि धन, संपत्ति और प्रतिष्ठा के विनाश के सारे दरवाजे उन्होंने खोल रखे थे।

इतनी सारी बुराईयों के बीच छोटे मालिक में एक अच्छाई थी पर्व त्योहार के मौके पर पूजा–पाठ बड़े धूमधाम से कराते थे। ऐसी पूजा–पाठ के मौके पर उसी गाँव के जयशंकर तिवारी उनके चहेते पुरोहित हुआ करते थे। तिवारी जी वही बातें करते, वही काम करते जिससे छोटे मालिक का अंहकार तुष्ट होता और इसके बदले उन्हें धोती, कुर्ता और गमछे के साथ अच्छी दक्षिणा भी मिल जाती । इससे पुरोहित तिवारी जी के मन में यह भ्रम पैदा हो गया था कि छोटे मालिक उनका सम्मान करते हैं और कभी जरूरत पड़ी तो उनकी मदद भी कर सकते हैं। इसकी चर्चा तिवारी जी ने कई बार अपनी पत्नी से भी की थी। तिवारी जी एक निर्धन व्यक्ति थे। उनके पास आय का एक मात्र साधन यह पौरहित्य कर्म ही था। सौभाग्य से उनकी पत्नी सुशीला बड़ी मेहनती, सहनशील और दुख में धैर्य न छोड़ने वाली स्त्री थी। तिवारी जी के पास बच्चों की भी बड़ी फौज नहीं थी। सिर्फ एक पुत्र था केशव जो बड़ा मेधावी था। तिवारी जी का दिन दुख में ही कट रहा था।

आज तिवारी जी फिर बड़े आनन्दित थे, छोटे मालिक के यहाँ से सत्यनारायण पूजा कराकर लौटे थे। अच्छी दान–दक्षिणा मिली थी। दान की वस्तुओं की गठरी पत्नी को थमाते हुए बोले जानती हो सुशीला। छोटे मालिक दुनिया के लिए चाहे लाख बुरे हों लेकिन मेरा तो बड़ा आदर करते हैं। जब भी सामने जाता हूँ पुरोहित जी– 'पुरोहित जी करते नहीं थकते। यह सुनकर सुशीला के चेहरे पर खुशी की लाली बिखर गई। वह थोड़ा सकुचाते हुए बोली ओ केशव के बाबू! बहुत दिन से एक बात मन में है, आप कहें तो बोलूँ?

पुरोहित जी उत्साह से भर कर बोले– हाँ–हाँ बोलो न सुशीला मन की बात मुझसे न कहोगी तो किससे कहोगी? सुशीला हिम्मत पाकर बोली– केशव के बाबू! आपको याद ही होगा पिछले साल जब आपको कई दिनों तक पूजा–पाठ का कोई काम नहीं मिला था तो हमारी क्या दशा हुई थी? तीन शाम तक तो मासूम केशव के मुँह में अन्न का दाना नहीं गया था। उसे मरनासन्न देखकर पड़ोसिन ने एक कटोरी चावल दाल दिया था जिसे खिलाने पर उसकी जान में जान आई थी।

पुरोहित जी की आँखों में वो दुख का दिन बुरे स्वप्न की तरह तैरने लगा। वे रूआंसे होकर बोले– हाँ सुशीला, मैं वो दुख का दिन कैसे भुला सकता हूँ?

सुशीला बोली– विपत्ति पूछकर तो नहीं आती। ऐसे बुरे समय तो फिर आ सकते हैं।

पुरोहित जी सिहर उठे। वे बोले– कहती तो तुम ठीक हो सुशीला, पर हमारे पास उपाय क्या है?

सुशीला बोली एक उपाय मेरे दिमाग में है। अगर छोटे मालिक मदद करें तो हम भविष्य में ऐसी विपत्ति से बच सकते हैं। पुरोहित जी बोले– सुशीला! तुम बोलो तो सही मुझे पूरा भरोसा है– छोटे मालिक हमारी बात मानेंगे, वे जरूर हमारी मदद करेंगे। सुशीला बोली अपने घर के सामने छोटे मालिक का पांच बीघे का एक प्लॉट है, यह तो आप जानते ही हैं। वह जमीन बहुत उपजाऊ है और हमारे लिए उसकी देखभाल ही सुगम है। वह जमीन अगर एक असामी के तौर पर छोटे मालिक हमें उपजाने को दे दें तो हमारा बड़ा उपकार हो और हमारा परिवार शायद गरीबी के चंगुल से बाहर निकल सके।

पुरोहित जी सुशीला की बात सुनकर उधेड़बुन में पड़े रहे। कभी सोचते, छोटे मालिक के लिए यह कौन सी बड़ी बात है। इतना तो वे मेरे लिए हँसते–हँसते कर सकते हैं। फिर विचार आता–कहीं छोटे मालिक नाराज हो गये तो? इस सोच से ही पुराहित जी पसीने से नहा उठते। उस रात पुराहित जी को नींद

नहीं आई। करवट बदलते रात कट गई। लेकिन एक बात का मन में निश्चय हो गया कि एकवार उनसे विनती करेंगे जरूर–कौन ठिकाना, शायद दु:ख के दिनों का अन्त होना हो।

सुबह नहा–धोकर, पूजा–पाठ का नित्य का नियम पूरा कर पुरोहित जी छोटे मालिक के दरबार पहुँचे। छोटे मालिक उस समय शरीर में तेल मालिस करा रहे थे। पुरोहित जी पर नजर पड़ी तो उन्हें आश्चर्य हुआ– आज इनके आने का कारण क्या है? उन्होंने मालिस करने वालों को इशारे से परे हटाया, अपने शरीर पर पतली मलमल की चादर ओढ़ते हुए, कुर्सी पर बैठे और बोले– अरे पुराहित जी– इतने सुबह–सुबह आप यहाँ? कोई बात है क्या?

पुरोहित जी ने हिम्मत बटोरी पर जबान हिलने का नाम नहीं ले रही थी।

छोटे मालिक ने फिर पूछा– कोई तकलीफ है तो बताइए। पुराहित जी ने देखा– मालिक प्रसन्न है– मेरी तकलीफ जानना चाहते हैं तो हकलाते हुए बोले– मालिक दिन बहुत दु:ख से कट रहे हैं। परिवार को दो वक्त की रोटी भी नसीब नहीं हो रही है। इसलिए एक अरजी लेकर आया हूँ कि मेरे घर के पास वाली पांच बीघे जमीन अगर मुझे उपजाने को दिया जाता, तो मिहनत करके हम हुजूर को भी उपज बढ़ाकर देते और हमें भी गुजारे का सहारा मिल जाता।

छोटे मालिक ने सब सुना पर कुछ बोले नहीं, चेहरा सख्त हो गया। ललाट पर कुछ तनाव की रेखाऐं उभर आयीं।

पुरोहित जी ने भांपा कि छोटे मालिक को बात अच्छी नहीं लगी तो हाथ जोड़कर बोले– अगर गलती हो गई हो मालिक तो मांफ कर दीजिए।

छोटे मालिक फिर भी कुछ नहीं बोले। मुखमंडल तनावयुक्त ही बना रहा पुरोहित जी को अब डर पैदा हो रहा था। थरथराती आवाज में बोले–छोटे मालिक, अब मैं जाँऊ?

ठहरिए पुरोहित जी! छोटे मालिक का गंभीर स्वर फूटा– आप जानते हैं कि अपने दूर–दराज की जमीन को भी मैं खुद ही जोतता–बोता हूँ, यह तो मेरे गांव की जमीन है। फिर भी आप मेरे कुल पुरोहित हैं और आपने पहली बार मुझसे कुछ मांगा है– इसलिए मैं जमीन तो आपको दूंगा, पर बटाईदारी पर नहीं– ठेके पर दूंगा। (पाठक को ज्ञात हो कि बटाईदारी में उपज का आधा मालिक और आधा असामी का होता है, और ठेके में निश्चित किया हुआ धन मालिक का और जो शेष बचा वह असामी का होता है)

छोटे मालिक फिर बोले– इस पांच बीघे की उपज में पचास मन धान मेरा होगा और शेष धान, पुआल और रब्बी सब आपका होगा। बोलिए मंजूर है?

पुरोहित जी ने मन ही मन हिसाब लगाया– इस पांच बीघे में सौ मन धान तो होता ही होगा। छोटे मालिक ने पचास मन धान लेकर शेष धान, समूचा पुआल और समूची रब्बी छोड़ देनेकी बात कही है– यह तो बिल्कुल न्यायसंगत है।

पुरोहित जी बोले– बड़ी कृपा है आपकी, छोटे मालिक, मुझे मंजूर है।

पुरोहित जी और सुशीला ने उस खेत को जोतने–बोने और अच्छी फसल उपजाने के लिए जी तोड़ मिहनत की। समय–समय पर खाद भी उचित मात्रा में डाली। हलांकि इन सारे इंतजाम में उन्हें अच्छा खासा कर्ज भी हो गया। शुरूआत में वर्षा इतनी अच्छी हुई कि फसल लहलहा उठी। पुरोहित जी और सुशीला के कदम धरती पर नहीं पड़ रहे थे। उन्हें क्या पता था कि उनके सुन्दर सपनों को लीलने के लिए दुर्भाग्य अपनी काली साया धीरे–धीरे फैला रहा था। धान में बालियां निकल आईं। यही वह समय था जब धान की बालियों में दाने भरते हैं। इस समय धान की फसल को जब पानी की सबसे ज्यादा जरूरत थी तो खेत सूख गये। जमीन की सारी नमी समाप्त हो चुकी थी। वर्षा की संभावना तलाशते किसानों के दिन आसमान निहारते कट जाते थे। वर्षा नहीं हुई तो नहीं ही हुई। पास कोई ताल–तलैया नहीं था जो पटवन की व्यवस्था हो पाती। पुरोहित जी और सुशीला के आंसू तो निरन्तर बहे लेकिन उससे धान की फसल को कोई लाभ नहीं पहुँचा। धान की बालियों में आधे–अधूरे दाने भरे। अन्ततोगत्वा फसल कटी और छोटे मालिक की खलिहान पर पहुँची। डंगाने, ओसाने की सारी प्रक्रियाओं से गुजर कर अब धान तौलने की बारी आयी। धान जब तौला गया तो हाय रे भाग्य–धान ठीक–ठाक पचास मन हुआ।

पुरोहित जी को अब छोटे मालिक की दया का ही भरोसा था। धान की तौल होते ही छोटे मालिक अचानक कठोर हो उठे। उनकी भृकुटी टेढ़ी और आँखें लाल हो गई। उनका व्यवहार कठोर हो उठा। उन्होंने निष्ठुर शब्दों में कहा– देखो पुरोहित! पचास मन धान मुझे मिलने थे और धान उतने ही हुए, तो इसमें मेरा क्या दोष है? जो बात तय हुई थी, उसमें कोई मुरव्वत नहीं होगी। तुम्हारे हिस्से में अब सिर्फ पुआल है, उठवाकर ले जाओ।

भाग्य के मारे पुरोहित जी का शरीर थर–थर कांप रहा था और आँखों से अश्रु–धारा बह रही थी। अब तक केशव को साथ लिए सुशीला भी खलिहान में आ गई थी। पिता की दशा देखकर केशव भी फूट–फूट कर रो रहा था। सुशीला पहले ही बहुत रो चुकी थी, उसके आँसू सूख गये थे।

पुरोहित जी ने हाथ जोड़कर रोते हुए कहा–दया करो छोटे मालिक हम भूखे मर जायेंगे। कम से कम पाँच मन धान दे दो मालिक।

छोटे मालिक गुर्राये! पुरोहित! तुमको भीख मांगने की आदत पड़ गयी है। धान का एक दाना तुम्हें नहीं मिलेगा।

पुरोहित जी ने छोटे मालिक के पैर पकड़ लिए। दया करो मालिक। कुछ धान दे दो–छोटे मालिक ने बलिष्ठ पैरों से पुरोहित जी को दूर धकेल दिया। निर्बल पुरोहित जी जमीन पर मूँह के बल गिरे। उनका नीचे वाला होठ कट गया, दोनों ठेहुनें और केहुनी छिल गये, खून बहने लगा। सुशीला ने दौड़कर जैसे–तैसे उन्हें उठाया और कहा–अब बहुत हो गया, आपसे जितना बन पाया, आपने सब किया–अब घर चलिए। पुरोहित जी सुशीला के सहारे घर की ओर चले और केशव भी पिता के कुरते को पकड़े जोर–जोर से रोता साथ–साथ चला।

घर पहुँच कर पुरोहित जी बहुत रोये। वे बोले–सुशीला! हम कर्ज से भी लद गये, कुछ हाथ भी नहीं आया।

सुशीला ने केशव को चुप कराया, उसे हृदय से लगाकर धीरज बंधाया और फिर परिहास के स्वर में बोली–मुझे तो समझ में नहीं आता कि मैं पहले आपके आंसू पोछूं या केशव के। फिर गंभीर स्वर में बोली–दुःख से निवृति अच्छे कर्म से ही हो सकती है। हमने सही रास्ता चुना और मुझे इस बात का पूर्ण संतोष है कि हमने अपने कर्म पूरी ईमानदारी से किए। अब उसका फल हमारे मन के अनुरूप नहीं आया तो उसमें हमारा क्या दोष है। इससे साफ जाहिर होता है कि अभी हमारे दुःख के दिन शेष हैं और हमें अपनी मिहनत और बढ़ानी होगी।

पुआल बेचने से लगभग आधा कर्ज टूटा। बचे आधे कर्ज को चुकाने और घर का खर्च चलाने के लिए, सुशीला को चार घरों में चौका–वर्त्तन का काम स्वीकारना पड़ा और पुराहित जी ने भी एक ठीकेदार के यहाँ मुंशी का काम पकड़ लिया। केशव बड़ी लगन से पढ़ता कक्षा– पर कक्षा पार करने लगा।

समय का पहिया घूमता रहा। केशव ने प्रथम श्रेणी से मैट्रिक पास कर लिया और उसे पास के शहर में एक डाकघर में पोस्ट–मास्टर की नौकरी लग गयी। नौकरी मिलते ही केशव ने माँ का दूसरे के घर का काम करना बंद करा दिया। पुरोहित जी दिनभर काम कर लौटते तो सुशीला सेवा करती। आपस में हास–परिहास होता। गरीब परिवार की आवश्यकताएं बहुत बड़ी नहीं होती, इसलिए कम आमदनी में भी उन्हें आनन्द ही आनन्द था।

इधर छोटे मालिक धीरे–धीरे बृद्धावस्था को प्राप्त हुए। उनके तीन पुत्र हुए। अनंत, सुकंत और बसंत बड़ा बेटा उनसे भी बड़ा आततायी हुआ। किसी गरीब–निर्बल को जान मारने की हद तक पीटना, किसी की फसल कटवा लेना, किसी के दरवाजे से गाय–भैंस खोल कर बेचवा लेना ये सब उसके रोज के कार्य थे। किसी निर्बल व्यक्ति की कन्या किशोरावस्था को पार कर रही हो तो उसके घर दिन–दहाड़े घुस जाने में उसे तनिक भी भय नहीं होता। लेकिन यह अत्याचार ज्यादा दिन नहीं चल पाया। एक रात डकैती के क्रम में गांव वालों के द्वारा खदेड़ कर मारा गया।

दुसरा बेटा सुकंत ने मैट्रिक पास किया। घर की दशा से तंग आकर एक मित्र के साथ भाग कर मुंबई (उस समय बंबई) चला गया। वहाँ उसने नौकरी प्राप्त की, विवाह भी कर लिया और सुनने में आता है कि वह वहां सुखी है।

तीसरे बेटे बसंत का जन्म देर से हुआ था। अभी 13–14 वर्ष का था। वही उनके बुढ़ापे का सहारा था। अपनी सारी सम्पति तो वे अपनी जिह्वा और काम–वासना की अग्नि में कबके स्वाहा कर चुके थे। सम्पत्ति गई तो नौकर–चाकर सब छोड़कर भागे। जिस छोटे मालिक के यहाँ रोज तीतर–बटेर कटते थे, आज वहां अन्न के लाले पड़ने लगे। छोटे मालिक के कुकर्मों की चक्की में छोटा बेटा बसंत पिस रहा था। माँ भी मोतियाबिन्द के कारण अंधी हो गई थी। दोनों माता–पिता की सेवा और देखभाल का भार उसी पर था। छोटे मालिक को अनेक रोगों जैसे भयानक खांसी, जोड़ों का दर्द, गैस का बनना और कब्जियत ने ग्रस लिया था। उनकी जिन्दगी दुःखों से भी हुई थी। जोड़ों के दर्द से कराहते रहते थे। उठ बैठ नहीं पाते थे। पेशाब पैखाना सब उन्हें बिस्तर पर ही करना पड़ता था। नहाना–धोना तो लगभग बंद ही था। वह उस जीवन में ही नरक का भोग–भोग रहे थे। वे रोज गिड़गिड़ाकर मौत मांगते थे, लेकिन उन्हें मौत नसीब नहीं हो रही थी। दोनों बाप–बेटे ने गांव वालों के साथ इतने जुल्म किये थे कि गांव में उनके दुःख से कोई दुःखी नहीं था, हाँ बसंत की दुर्गति देखकर लोगों को दया जरूर आती थी।

इधर सुशीला की भी तबियत खराब रहने लगी थी। गांव के नीम– हकीम की दवा से लाभ नहीं हो रहा था। आज पुरोहित जी सुबह–सुबह उठकर शहर के लिए निकले, यह सोचकर कि शहर के डाक्टर से हाल बताकर दवा भी ले लेंगे और केशव से कहकर कुछ पैसे भी लें लेंगे। सुशीला को छोड़कर जाना नहीं चाहते थे। लेकिन हाथ एकदम खाली था। अतः सुशीला को अपना ध्यान रखने हेतु समझाकर उन्हें जाना पड़ा।

पुरोहित जी के निकले दो घंटे हुए होंगे कि छोटे मालिक की हवेली से जोर–जोर से रोने की आवाज आई। पहले तो लोगों ने बाहर से ही स्थिति को समझने की कोशिश की, लेकिन जब लगा कि ठकुराइन और बसंत के रोने के स्वर है तो लोग अन्दर गये। ठकुराइन छाती पीट–पीट कर रो रही थी बसंत बिल्कुल अनाथ की तरह फूट–फूट कर रो रहा था । छोटे मालिक का देहावसान हो गया था।

लोगों का आना–जाना लगा रहा। जिसने भी देखा या सुना–यही कहा–अच्छा हुआ बड़ी तकलीफ में थे– मुक्ति मिल गई। अन्धी ठकुराईन और अनाथ बसंत कभी रोते, कभी रूक कर बात करते– अब क्या होगा? दोनों ही लाचार थे– दोनों ही के पास कोई उत्तर न था। इस तरह दो दिन–दो रात बीत गये।

दिन के दस बजे होंगे। लोगों ने देखा पुरोहित जी, केशव के साथ आ रहे हैं। कुछ बुजुर्ग उनकी ओर लपके। पास जाकर बोले– जानते हैं पुरोहित जी! छोटे मालिक मर गये। पुरोहित जी के पग थम गये। हृदय में एक चोट सी लगी। पुरोहित जी ने पूछा–कब? कैसे? क्या हुआ?

लोगों ने कहा, बीमार तो थे ही न! परसों प्राण छूट गये। पुरोहित जी को लगा– अरे! जाते वक्त देख भी नहीं पाये। वे बोले– तब तो दाह संस्कार सम्पन्न हो गया होगा?

लोगों ने कहा– लाश तो घर में ही रखी हुई है। अंत्येष्ठि के लिए जाने का कोई उपाय ही नहीं हो पाया है। अपने जीवन काल में लोगों का उपकार ही इतना किया है कि आज अन्त समय में कोई साथ देने को तैयार नहीं है। पुरोहित जी बोले– राम! राम! यह तो अधर्म है। वे बेचैन हो उठे। सुशीला की अस्वस्थता का अब उन्हें भान न रहा। केशव से बोले– बेटा तू घर जा, मैं जरा छोटे मालिक के यहाँ से आता हूँ। इतना कहकर वे उनके घर की ओर बढ़ गये।

पुरोहित जी ने देखा– ठकुराइन धीरे–धीरे सुबक रही है। बसंत की रोते–रोते आँखे सूज गई थी। पुरोहित जी ने

ठकुराइन को धैर्य बंधाया और बसंत के शिर पर बड़े प्यार से हाथ रखा और बोले–बेटा! अब रोना नहीं है। अब अपने को खुद सम्हालना है और माँ का सहारा बनना है। इतनी आत्मीयता से किसी ने पहली बार उसके शिर पर हाथ रखा था। बसंत का दिल तो अभी एक बालक की तरह ही था। उसे लगा जैसे डूबते को तिनके का सहारा मिल गया हो। वह पुरोहित जी से लिपट गया और खूब रोया– जी भर कर रोया– ऐसा तो वह कभी अपने पिता के हृदय से लगकर भी नहीं रोया था। पुरोहित जी उसका सिर सहला रहे थे और ढाढ़स बंधा रहे थे। बसंत रो–रो कर हल्का हुआ तो बोला–पुरोहित चाचा! अब क्या होगा?

पुरोहित जी बोले– सब अच्छा होगा बेटा, सब अच्छा होगा। आप मुझे पांच मिनट के लिए छोड़िए मैं बस गया और आया।

बसंत उनसे अलग हुआ और बड़े बिह्वल स्वर में बोला–आप आयेंगे न पुरोहित चाचा?

मैं जरूर आउंगा बेटा, मैं अभी आया कहकर पुरोहित जी निकले। अपने घर पहुँच कर बाहर से ही आवाज लगाई– केशव! बेटा बाहर तो आना।

केशव बाहर आया तो साथ में सुशीला भी बाहर आई। गांव के लोग भी इकट्ठे हो गये।

पुरोहित जी ने कहा– केशव तू माँ इलाज के लिए जो हजार रूपये लाया है, बेटा वो मुझे दे दे। मुझे छोटे मालिक की अर्थी उठानी है, उनका विधिवत् दाह–संस्कार करना है। केशव ने कहा– ऐसा मत कहिए बापू। आप माँ की हालत देख रहे हैं, खांस–खांस कर बेदम हो जाती है। खाट में सट गई है। बापू अगर माँ को कुछ हो गया तो मैं अपने आपको मांफ नहीं कर पाऊंगा।

पुरोहित जी बोले– तुम्हारी माँ एक साहसी औरत है बेटा। उसे कुछ नहीं होगा। मैं छोटे मालिक की अंत्येष्ठि से लौटकर तुम्हारी माँ के इलाज की व्यवस्था करूंगा। अभी तो पहले छोटे मालिक की मांटी को उठाना जरूरी है। ला पैसे मुझे दे दे।

अब केशव अपने क्रोध को रोक नहीं पाया। बोला बापू मैं वो दिन आज तक नहीं भूला हूँ, जब छोटे मालिक ने आपको पैरों से ठोकर मारी थी। आपका शरीर लहुलुहान हो गया था। अब भी उस घटना की याद आने से मैं तड़प उठता हूँ और उस आदमी के लिए आप चाहते हैं कि अपनी माँ के इलाज के पैसे दे दूं। मेरी समझ में नहीं आता बापू कि जिस आदमी के लिए पूरे गांव में किसी का दिल नहीं पसीजा, उसके लिए आप इतने बेचैन क्यों हैं?

पुरोहित जी गंभीर स्वर में बोले– केशव! मुझे दु:ख है, तू पढ़–लिखकर भी मूर्खों जैसी बात करता है। बेटा, विद्या मनुष्य को विनम्रता और पात्रता प्रदान करती है। विद्या प्राप्त कर भी मनुष्य ने इन्सानियत नहीं प्राप्त की तो शिक्षा का क्या मतलब। किसी ने मुझे दु:ख दिया, हम बदले में उसे दु:ख देने का संकल्प कर लें तो यह दुनिया जीने लायक नहीं रह जायेगी। एक मृत आदमी से राग और द्वेष कैसा? और सबसे बड़ी बात यह है कि आज का जो दु:ख है उसे छोटे मालिक नहीं भोग रहे, उसकी त्रासदी एक निश्छल बालक और एक नेत्रहीन, पति–शोक संतप्ता स्त्री झेल रही है। क्या यह उचित है?

सुशीला भी केशव की बातों से बेचैन हो उठी थी। उसने केशव को डांटते हुए कहा, तुम्हें अपनी माँ कि चिन्ता है तो क्या ठकुराइन तुम्हारे लिए माँ से कम है, क्या बसंत तुम्हारा भाई नहीं। केशव मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ– तुम न सिर्फ पैसे दो बल्कि स्वयं जाकर उस पीड़ित परिवार की मदद करो। फिर क्या था सारे गांव के लोग जैसे सोते से जागे। सबने एक स्वर में कहा हमसे बड़ी भूल हो रही थी। चलिए हम सब चलेंगे और छोटे मालिक की अन्तिम यात्रा ससम्मान पूर्ण करेंगे।

अर्थी में आगे बसंत और केशव ने कंधा दिया। सारे गांव के लोगों ने जय घोष करते निकला...।

डॉ० अब्दुल कलाम

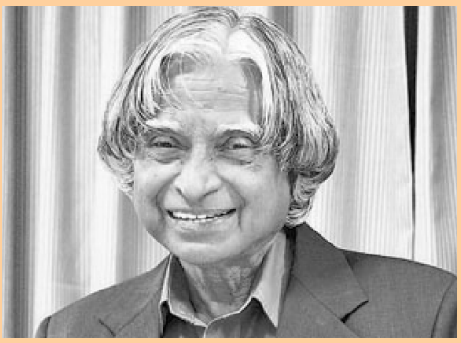

देश का सम्मान तुम
देश का उत्थान तुम
युवकों का प्रेरणास्थान तुम

स्वप्न तुम, आशा तुम
विश्वास और स्वाभिमान तुम

देश का गर्व तुम
रत्न तुम
मानवता का कल्याण तुम

राष्ट्रधर्म, देशभक्ति की मूर्ति तुम
निर्बलों का आधार तुम

विज्ञान तुम
तंत्रज्ञान तुम
भारत माता का वरदान तुम

शत् शत् नमन तुम्हें
सभी भारतियों की पहचान तुम।

अनंत वडघणे
हिंदी विभाग
डॉ० बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
मो०–8554006708

पुस्तक समीक्षा

काल सापेक्ष ज्ञान की लौ तेज करता

'कथा–काशिका'

डॉ० अनुज प्रभात
फारबिसगंज, अररिया–854318
मो०–09470023249

'कथा–काशिका' कोसी अंचल के जाने–माने हस्ताक्षर कर्नल अजित दत्त की हिंदी साहित्य लेखन में 'नचिकेता उवाच', 'अभियान कथा' एवं 'कोसी की दग्ध अंतर कथा' चौथी पुस्तक है। पूर्व इसके उन्होंने अंग्रेजी में 5 पुस्तकें लिखीं। सभी पुस्तकें अपने–आप में जहाँ रोचकता लिए रही, वहीं भौगोलिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों से परिचित कराती दिखीं।

'कथा–काशिका' भी क्षेत्र विशेष से जुड़ी तो है ही, मगर यह ऐतिहासिक कहीं अधिक है। कोसी का यह क्षेत्र, जो कभी महाभारत कथा से जुड़ा क्षेत्र रहा है, जिसमें रामायण की जानकी के मायके की भी कथा रही है, वह इतिहास के पन्नों में भी 12वीं शताब्दी से लेकर मुगल सल्तनत तक एवं ईस्ट इंडिया कंपनी के भारत आगमन से लेकर 1857 के विद्रोह आजादी के 1947 तक, अपनी कहानी शोध के रूप कहता नजर आया है।

कर्नल अजित दत्त, जिन्होंने 1971 में भारतीय सेना में कमीशंड ऑफिसर के पद से अपने कैरियर की शुरूआत की और पर्वतारोहण के शौक–विशेष ने उन्हें अपनी ऊँचाइयों तक पहुँचाया कि उन्होंने भारत के लिए माउंटनियरिंग कमीशन का प्रतिनिधित्व करने बार्सेलोना (स्पेन) और अमेरिका के साथ–साथ स्विटजरलैंड, फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैंड, भूटान आदि देशों की यात्राएँ भी कीं। यात्रा क्षेत्र भ्रमण अध्ययन के इनके भीतर के रचनाकार को ऐसे जागृत किया कि सामाजिक पहलू के भी वे ऐतिहासिक चिंतक बन गए।

'कथा–काशिका' कर्नल दत्त की ऐतिहासिक बनाम समाजिक पहलुओं का कथा चित्रण है। इस पुस्तक की पहली कहानी 'कालाचन्द' है। यह कहानी इतिहास के उन पन्नों को खोलती है, जिसमें सांप्रदायिकता के गतिरोध ध्वस्त होते नजर तो आते हैं, परंतु संप्रदाय विशेष ने उसे अपने ही धर्म का विरोधी बना देता है। कालाचंद ब्राह्मण समुदाय का युवक जिससे सरदार की पुत्री दुलारी प्रेम कर बैठी है और सरदार पुत्री मोह में अपने धर्म को भी अनदेखा कर देती है पर कालाचंद को स्वयं अपना समाज स्वीकार नहीं करता और वह मुहम्मद फार्मुला बन हिंदुओं पर कहर ढाने लगता है। मगर वह दुलारी, जिसने कालाचंद को इस्लाम में परिवर्तन कराए बिना स्वीकार किया था, वह उसे उसके इस दरिंदे रूप के कारण छोड़ देती है, यह कहते हुए ''मैं कालाचंद राय भादुड़ी की पत्नी बनी थी और अब भी हूँ। मुझे दरिंदेवाले मुहम्मद फार्मुली वाला रूप से कोई लेना–देना नहीं।'' दुलारी का प्रेम कालाचंद से था न कि फार्मुली से। इस कथा में एक तरफ प्रेम में धर्म की सीमा नहीं होती दिखती है तो दूसरी तरफ धर्म खुद से अपने ही धर्म के लोगों को विद्रोही बनाता दिखता है, जिसके पीछे तथाकथित दूसरे ठेकेदार होते हैं।

इस संग्रह की दूसरी कथा खंगार शौर्य राजा खेतसिंह की है। लेखक ने संभवतः 2005 में बुंदेलखंड की यात्रा की तो वहाँ से इस ऐतिहासिक तथ्यों को समेटा हो और फिर क्यों न ऐसा हो? हमारे भीतर यदि रूचि हो तो हम भ्रमण के साथ–साथ तथ्यों का संग्रह कर उसे मूर्त रूप दे सकते हैं। लेखक ने ऐसे पल को गँवाया नहीं, बल्कि लिपिबद्ध किया। उन्होंने खंगार जाति की कथा लिखी कि कैसे क्षेत्रिय राजा खेतसिंह को रामचंद्रवंशी ने निम्न कुल मानते हुए उसके कुल से संबंध जोड़ने के नाम पर आमंत्रित कर छल से मौत के घाट उतार दिया और कैसे वहाँ के खंगार बिहार के क्षेत्र, नेपाल, पूर्णिया आदि में बसकर अपने को आरक्षण में सेंध मार अतिपिछड़े में शामिल हो लिए। लेखक ने इस संबंध में लिखा है– ''अंग्रेज 1947 के बाद भारत और बिहार को स्वतंत्र कर चले गए। नई सामाजिक व्यवस्था कायम हुई। आरक्षण का दौर शुरू हुआ– डोम–चमार जैसे दलितों के लिए तय आरक्षण सुविधाओं और संरक्षण में सेंध लगाकर कई जाति वर्ण अपने लिए नाजायज हिस्सा खसोटने की कुटिलता से हिचके नहीं।''

लेखक ने यहाँ जिस सच को रखा है, वह आज भी जारी है। कुछ जातियाँ आज भी सामाजिकता बनाम राजनीति की लड़ाइयाँ लड़ रही हैं।

स्वतंत्रता संघर्ष का इतिहास अधिकांश रूप से 1857 के विद्रोह के बाद का बहुतायत में उल्लिखित किया गया है, लेकिन भागलपुर के तिलकामांझी ने सन् 1784 में ही इसका बिगुल फूँक दिया था। उस समय के अंग्रेज कलक्टर क्लीवलैंड को उन्होंने पेड़ पर चढ़कर गुलेरे से ऐसा निशाना लगाया था कि उसका माथा फूट गया और प्राण पखेरू उड़ गए। सजा के रूप में अंग्रेजी हुकूमत ने उनके भी गले में रस्सी डाल पेड़ से लटका दिया और वे शहीद हो गए। उस काल का शहीद आज आस्था में भगवान समान है। इस घटना का रोचक उल्लेख लेखक ने जिस तरह से किया है, वह भागलपुर के बाबा तिलकामांझी के लिए समर्पित भाव है।

फारबिसगंज लेखक का निजी निवास स्थल है और यहाँ का सरोवर सुल्तान पोखर एक ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थल है। पोखर का इतिहास सुल्तानी माई से जुड़ा इतिहास है। इसमें प्रेम के साथ–साथ धार्मिकता और तुर्की सल्तनत की शासन व्यवस्था के लिए कठोरता का भी वर्णन है। लेखक ने 'सुल्तानी माई' शीर्षक कथा में जिन ऐतिहासिक तथ्यों को रखा है, वे खोजपूर्ण हैं। कथा में राजा कंसनारायण के पुत्र यदुसेन और गुरुकुल के आचार्य कृष्णकांत की पुत्री गंगा की प्रेम कहानी का वर्णन है। उस समय प्रचलन था कि जो राजा मालगुजारी नहीं दे पाता, उसे अपने एक पुत्र को मुसलमान बनाकर सुल्तान के पास भेजना होता था। धर्म परिवर्तन के नाम पर यदुसेन का नाम सुल्तान रखा गया था। इस

परिस्थिति से अपने को बचाने के लिए गंगा ने शादी से पहले झूमर प्रथा के बहाने विषपान कर पोखर में अपने को समर्पित कर दिया। सुल्तान भी गंगा को बचाने में पोखर में डूब गया। कहा जाता है कि धार्मिक संस्कार में अवरुद्धता आने की स्थिति में दोनों को वहीं दफना दिया गया। लेकिन आज उनकी महत्ता सुल्तानी माई के रुप में है। जहाँ दोनों की कब्र है। लेखक ने उसे अपने क्षेत्र विशेष के लिए खोज कर लिखा, जो उनके माटी प्रेम का प्रतीक है।

मेवाड़ अपने आप में राजपूताने का इतिहास रहा है। महाराणा उदय सिंह और महाराणा प्रताप की धरती को कौन नहीं जानता? उसी मेवाड़ के शासक नागादित्य के पुत्र शैलाधिय की कथा 'राजधर्म' शीर्षक में लेखक ने प्रस्तुत की है। मिथिलांचल में एक कथा है कि कविवर विद्यापति के यहाँ स्वयं भगवान शिव उगना नाम से नौकर बनकर रहे। यहाँ राजकुमार शैलाधिय ने 'वप्पा के नाम नागदा के एक ब्राह्मण के यहाँ नौकर बनकर गाय चराने का काम किया। लेकिन भीतर का राजधर्म और कुलीन संस्कार उसे तलवारबाजी और तीरंदाजी के अभ्यास से वंचित नहीं रख पाया, फिर उसने गुरु गोरखनाथ के सेवा से प्राप्त खड़्ग से अपनी वीरता का शौर्य दिखाया। सोलह वर्ष की उम्र में राजा मोरी के दरबार का सेनापति बना। इतना ही नहीं उसने तुर्कों और अरबों से राजस्थान को खाली करवाया। शैलाधिय की शौर्यता की ऐतिहासिक चर्चा बहुत कम स्थलों पर की गई है, इसलिए प्रस्तुत कथा के माध्यम से लेखक ने राजस्थान की वीरता को उजागर करने का प्रशंसनीय कार्य किया है।

छत्रपति शिवाजी मराठों के सबसे प्रसिद्ध योद्धा रहे। लेकिन शिवाजी के बाद जिस वीर युवा का नाम लिया जाता है बाजीराव पेशवा। बाजीराव के संबंध में जो कहावत है, उसे लेखक ने यहाँ रखा है– एक बाजी और बाकी सब पाजी। बाकी सब पाजी इसलिए कहा गया कि उसने दिल्ली के बादशाह और उसकी विशाल मुगल सेना के नेतृत्व करते निजामों को चूहेदान की तरह फाँस–फाँसकर परास्त किया और वे सुलह करने पर मजबूर हूए। लेखक ने यहाँ लिखा है कि बाजीराव की तुलना इतिहासकारों ने नेपोलियन की रणनीति से की है। बाजीराव की वीरता, उसका विविध शासकों से युद्ध और कौशल का वर्णन लेखक ने इस पुस्तक की 12वीं कहानी 'एक बाजी बाकी सब पाजी' में किया है। विजय नगर के राजा कृष्णदेव राय के किस्से तेलानीराम से जूड़ हमने उसी प्रकार पढ़ा हैं, जिस प्रकार अकबर बीरबल के होते हैं। लेकिन राजा कृष्णदेव राय के राज्य की कथा में उसकी समृद्धि की चर्चा के साथ छह हाथोंवाली भगवान श्री गणेश की प्रतिमा और उससे संबंधित भविष्यवाणी का अपना एक अलग इतिहास है, जो साम्राज्य की सुरक्षा को बयाँ करता दिखा है। लेखक ने अपनी खोज कथा में लिखा है कि विजय नगर के पंडित गणेश दत्त ने घोषणा की थी कि जिस दिन भगवान गणेश के सब हाथ गिर जाएँगे, वे अपना हाथ कटवाकर मृत्युपर्यंत समाधि ले लेंगे। ऐसा इसलिए कि भगवान गणेश के छह हाथ साम्राज्य को आशीष देने का प्रतीक था और वास्तविकता तब दिखी, जब सारा कृष्णदेव राज की मृत्यु से पूर्व एक हाथ टूटा। क्रमशः सभी छह हाथ टूटने के साथ साम्राज्य का पतन होते जाना और अंत में पंडित गणेश दत्त का अपनी घोषणा के अनुसार अपना हाथ कटवाकर समाधि ले लेना तथा बहमनी सल्तनत के युद्ध आदि सभी ऐतिहासिक तथ्यों को कर्नल अजित दत्त ने अपनी रचना 'छह हाथोंवाली मूर्ति' में रखा है, जो उस काल के विश्वास को चित्रित करता है।

लेखक ने अपनी इस पुस्तक में हिंदुस्तान की खोज के संदर्भ की एक कथा भी सम्मिलित की है। इसमें इटली के वेनिस शहर से निकलकर हिंदुस्तान आनेवाले यात्रा–वृत्तांत सह जीवनी को रेखांकित किया गया। मनूची हिंदुस्तान में चिकित्सक बनकर रहा, तोपची बनकर रहा और सालों साल दिल्ली सल्तनत से जुड़ा रहा। उस समय के हालात को कलमबद्ध करता गया, जो एक इतिहास बना। इस विषय पर लेखक ने एक ऐतिहासिक खोज को कथा का रुप दिया, जो शोधपरक है।

जिस पुस्तक में इतनी कहानी लिखी जाए, उसमें राजधानी दिल्ली और मुगलशासक सम्राट अकबर की कहानी न हो तो इतिहास और ऐतिहासिक कथा नहीं बनती। लेखक ने इन दोनों को अपनी पुस्तक में संकलित किया है, किंतु एक अलग अंदाज में। राजधानी दिल्ली में उन्होंने छठी शताब्दी से 736 ई० के तोमर राजपूत के अधिपत्य से 1192 तक चौहान राजपूत के स्वर्णिम काल का वर्णन किया है। बाद उसके कुतबुद्दीन ऐबक मुस्लिम शासक से लेकर 1770 में अंग्रेजों का बंगाल से आरंभ होनेवाले शासन का सन–दर–सन कैलेंडर भी प्रस्तुत किया है, जो तारीफे काबिल ही नहीं एक जिज्ञासु व्यक्ति को कैसा होना चाहिए इसका भी उदाहरण दिया है। फिर सम्राट अकबर के शासनकाल की जो बातें कही गई हैं, वह उनकी अपनी कोई निजी गाथा नहीं बल्कि उनके जुझारूपन की गाथा है अकबर के विद्रोही तो कई थे, जिन्हें पुस्तक में लिखा गया है। परंतु उनके सगे संबंधी में जिनकी चर्चा को ऐतिहासिक माना गया है वे हैं, उधम खाँ, सरफुद्दीन, सिकंदर खाँ, मिर्जा मुहम्मद हुसैन आदि। लेखक ने अतिरिक्त कई और जैसे मुनीम खाँ, खानजमाँ, ख्वाजा मुअज्जम, अब्दुल नवी, दाऊद आदि के साथ–साथ राजा रामचंद्र, राजा लक्ष्मी नारायण आदि की चर्चा की है, जो भूले–भुलाए से हैं। 'अकबर और विद्रोही सरदार' शीर्षक कथा में एक भूल छपाई की दिखी। जिसमें अकबर की तिथि 11 फरवरी 1556 के स्थान पर 1956 लिखा चला गया है। परंतु जिस तथ्य को लेखक ने यहाँ प्रस्तुत किया है, वह खोज असंभव को संभव बनाने जैसा है।

लेखक ने अपनी पुस्तक 'कथा–काशिका' में इन सबों के अलावे पूर्णिया की फौज का बलदियाबाड़ी का युद्ध, बंगाल का षड्यंत्र, परवाहा युद्ध का नर कंकाल, फरमान नदी, सिखों की गुरु–परंपरा का चित्रण करते हुए कर्मयोगी श्रीकृष्ण में महाप्रयाण का वर्णन कर संग्रह को समाप्त किया है।

यहाँ हम समीक्षित पुस्तक 'कथा–काशिका' के बारे में यह कहने से अपने आप को रोक नहीं पा रहे हैं कि आज लेखन की जो परंपरा चल रही है और विमर्शवाद जिस प्रकार से लेखन पर हावी होता जा रहा है, यह संग्रह उससे परे अपना स्थान बनाने में सक्षम हुआ है। इसका विषय यद्यपि ऐतिहासिक है, लेकिन इसकी प्रस्तुति, कथा निरूपण, शिल्प संवरण, ऐतिहासिक के बीच सामाजिक है, जो किसी भी पाठक के काल सापेक्ष ज्ञान की लौ को तेज़ करता है।

समीक्षा

सुबह होने वाली है एक नजर

निर्मला सुरंद्रन
सी–1/202 त्रिमूर्त्ति अपार्टमेंट
नागपुर–440030 (महाराष्ट्र)

साहित्य समाज में वह उपहार है जो जीवन के हर क्षेत्र में मार्गदर्शक का काम करता है इसीलिये साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। साहित्यकार का यह कर्तव्य होता है कि वो अपनी रचना से पाठक वर्ग के अंदर मंगलमय जीवन जीने का बोध उत्पन्न कराये, श्री शिवकुमार दुबे की नवीनतम कृति ''सुबह होने वाली है'' अंधेरे दूर होने का आश्वासन देती व अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ने का संदेश देती वो कृति है, जिसकी रचना करते हुये कवि ने मानवीय भावनाओं के समस्त पहलुओं का स्पर्श किया है काव्य संग्रह की एक पंक्ति है– ''आकांक्षाओं के दीप प्रज्जवलित कर/हृदय में/उमंग भर हृदयस्पर्शी/चाहतों का मनपसंद/ख्वाब पाले जी रहा हूँ।''

सामाजिक विसंगतियों से रू–ब–रू होते हुये उन्होंने ''सौदागर'' रिश्वत'' चेहरे'' व ''धर्मान्तरण'' जैसे काव्य की रचना की है। सौदागर में स्वार्थपरता से व्यथित हो वे कहते हैं ''सारे संसार में फैले हुये हैं सौदागर/सौदा करना जरूरी है/हर एक सौदे के मसौदे/पर जी रहा है सौदा/और समझौता जीवन की नियति है।''

कुल 59 कविताओं के इस संग्रह की खासियत यह है कि हर कविता एक नई अनुभूति से जुड़ी है, हर छोटी बड़ी कविता अभिव्यक्ति की एक सरिता है जो इस संग्रह को सागर का रूप प्रदान करती है।

आज देश की राजनीति बिना किसी नीति के राजकाज चला रही है। आज आपाधापी का बाहुल्य है। चाहे दल के रूप में हो या संगठन के रूप में जनहित के अभाव में हताशा जन साधारण की वेदना 'गरीबी' शीर्षक कविता की इन पंक्तियों में झलकती है– 'लालसा/ इच्छायें एकता पाठ/राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न/ होने के साथ होता है/गरीबी मिटाने की इच्छाशक्ति का अभाव जिम्मेदार है/कमजोर वर्ग को उत्पन्न करने के लिये'

जन साधारण में जोश भरने व अन्याय के खिलाफ आवाज बुलंद करने को प्रेरित है रचना 'जागो जनता जागो' जिसमें कवि आह्वान करते हैं– 'प्रजातंत्र के हैं सच्चे रक्षक/हम बता सकते हैं अपना अधिकार/सत्ताओं में बैठे हमारे ही प्रतिनिधियों को/उतार सकते हैं सड़कों पर/जो भूल गये हैं/मर्यादा लोकतंत्र की'

सुबह होने वाली है, कविता संग्रह अयन पब्लिकेशन, महरौली, नई दिल्ली द्वारा आकर्षक पेपरबैक में प्रकाशित की गई।

जीवन में हम जब किसी निराशा से घिरते हैं तब कवियों और लेखकों के बहुमूल्य पंक्तियाँ हमें निराशा के गर्क से निकलने की प्रेरणा देती है व आशा का दीप जलाकर हमें उबारने का प्रयास करती है। साहित्य के इस चमत्कार को नमन है। कवि की ये प्रक्तियाँ अंधेरे दूर करने की प्रेरणा देती है, 'अंधियारे अपना काम चुपचाप करने में माहिर है/खोजनी होगी राह नई रोशनी की/किरणें अंधियारे के पास/भेदकर जगमग सबको कर दे' साथ ही 'मिन्नते छोड़ दो' में कवि लिखते हैं– 'मिन्नतों में बीत गया समय/मजबूरी की राह चला अब कोई नहीं/ उड़ने के लिये आसमान काफी है।

कवि शिवकुमार दुबे की रचनायें सरल व सौम्य भाषा में लिखी गई है जो जन साधारण के मन को सहजता से स्पर्श करती है। कोमल कल्पना को उड़ान देते हुये वे 'तुम्हारे रूठने पर' शीर्षक कविता की रचना करते हैं– 'तुम्हारे रूठने पर/घर पर लगा/नीम का पेड़ भी/अपनी शाखाओं पर लगी/पत्तियों को हिलाकर/तुम्हें सांत्वना देना चाहता है।

कुल मिलाकर काव्य संग्रह 'सुबह होने वाली है' एक पठनीय कृति है। किसी किसी कविता की रचना में धैर्य का अभाव दिखता है। सप्रयास काव्य रचना की विविधता भले न हो पर कविताओं में लयबद्धता के लिये थोड़ा सा प्रयास आवश्यक होता है। काव्य संग्रह में कहीं–कहीं बेतरतीबी दिखी, कहीं–कहीं अनावश्यक पंक्तियाँ भी भावनाओं को पन्ने पर उतारते समय थोड़े से और प्रयास की उम्मीद कवि से की जा सकती है। अगर ऐसा हुआ तो सोने पर सुहागा होगा।

पुस्तक का मुखपृष्ठ उत्कृष्ठ है। यह पुस्तक संग्रहणीय है एवं हर घर के पुस्तकालय का अंश बनने योग्य भी। कवि को भावी जीवन व पुस्तक के लिये असीम शुभकामनायें इन पंक्तियों के साथ।

'शब्दों से व्यथा को दूर कर दो
रोशनी का पूंज स्नेह से जला दो,
कोई बाधा मार्ग में अवरोध न हो
एक दीपक विश्व के आंगन में लगा दो'।

लघुकथा

बिलखती लहरें

डॉ० रामकिशोर शर्मा
भागलपुर
मो. 9801785234

एक बार लहर बड़ी निराश और दुखी बैठी थी। समुद्र उसे आगे बढ़ने और बिखरने के लिए कह रहा था, किन्तु वह डर रही थी। अपने आश्रय दाता के अंचल में छिपकर बैठे रहना ही उसे अच्छा लगता है। वह इतने में ही संतुष्ट रहना चाहती थी।

समुद्र ने उसे समझाया– 'भद्रे!' आगे बढ़ो। मिलन का आनन्द जड़ता में नहीं; गति के साथ जुड़ा है। विद्रोह के बिना प्रणय की सरसता की अनुभूति कैसे होगी? शीत के अभाव में आतप का स्वाद कैसे चखा जा सकता?''

लहर चाहती नहीं थी कि उसे आगे बढ़ने के लिए झंझट में पड़ना पड़े। भविष्य न जाने कैसा होगा? इस अनिश्चितता की कल्पना उसे भयभीत कर रही थी। उसने तृष्णा भरी नेत्रों से समुद्र को देखा और चाहा कि उसे जहाँ का तहाँ रहने दिया जाय। समुद्र गम्भीर हो गया। उसने कहा– 'देखती नहीं, मेरे अन्दर कितना दर्द है जो मुझे क्षणभर भी चैन से बैठने नहीं देता। उस दर्द में हिस्सा बटाये बिना तुम कैसे मेरी बन सकोगी?''

लहर सुबक रही थी। अतीत की सरसता और आगत की अनिश्चितता के बीच वह असमंजस में खड़ी थी। उस स्तब्धता को तोड़ती हुई आगे वाली लहरें हँस पड़ीं और बोलीं– ''सहेली हमें देखो न, उद्‌गम से बिछुड़कर ही तो हम भी अनंत की ओर जा रहे हैं, अपने प्रियतम की महानता के अन्तर्गत ही तो क्रीड़ा–कल्लोल कर रही हैं – हम उससे बिछुड़ी कहाँ है?''

चर्चा बड़ी मधुर थी। सुनकर सूर्य की किरणें भी ठिठक गईं। प्रौढ़ाओं के समर्थन में सिर हिलाते हुए उन्होंने कहा– ''हमें अपने प्रियतम की विशालता में विचरण करते हुए तब की अपेक्षा अब अधिक उल्लास है तब हम निकटता की निष्क्रियता को जकड़े बैठी थीं।''

प्रसंग पूरा हो नहीं पाया था कि महकती गंध भी वहाँ आ पहुँची और वह भी अपनी अनुभूति कहने लगी। चर्चा चल ही रही थी कि इन्द्र ने द्वार खटखटाया और कहा– ''चलने में विलम्ब न करो। प्यारी दुनिया तुम्हारी प्रतीक्षा में कब से बैठी है?''

सागर सकपकाकर उठ खड़ा हुआ। मेघ का वाहन तैयार था। भाप बनकर वरुण ने उस पर आसन जमाया और इन्द्र के इशारे पर सुदूर यात्रा पर चल पड़ा। बेचारी नवोढ़ा लहर ने तृष्णा भरी नेत्रों से पूछा– ''हे मेरे आश्रयदाता, क्या तुम्हें भी वियोग सहना पड़ता है?'' सागर की आँखें छलक पड़ी। उसने कहा– ''भद्रे! यह बिछुड़न नहीं, नवीनीकरण है। जीवन इसी का नाम है। मैं मेघ बनकर आकाश में जाता हूँ और सरिताओं की जलराशि बनकर फिर वापस लौट आता हूँ। इस गतिशीलता से किसी जिवित को छुटकारा नहीं। गगन का परित्याग करने पर तो मरण ही साथ रह जाएगा। लहर की आँखें खुल गईं, उसने चलना आरंभ कर दिया।

प्रेरक कथा

महात्मा बुद्ध के पास सेठ रतन चंद दर्शन को आए तो साथ में ढ़ेरों सामग्री उपहार स्वरूप लाए। वहाँ उपस्थित जन–समूह एकबार तो वाह–वाह कर उठा। सेठ रतन चंद का सिर तो गर्व से तना जा रहा था। बुद्ध के साथ वार्तालाप प्रारम्भ हुआ तो सेठ ने बताया कि इस नगर के अधिसंख्य चिकित्सकों, विद्यालयों और अनाथालयों का निर्माण मैंने ही कराया है। आप जिस सिंहासन पर बैठे है। वह भी मैंने ही भेंट किया है, आदि–आदि। कई दान सेठ जी ने गिनवा दिए। सेठ जी ने जब जाने की आज्ञा चाही तो बुद्ध बोले– ''जो कुछ साथ लाये थे, सब यहाँ छोड़ कर जाओ।'' सेठ जी चकित होकर बोले– ''प्रभु, मैंने तो सबकुछ आपके समक्ष अर्पित कर दिया है।''

बुद्ध बोले– '' नहीं, तुम जिस अहंकार के साथ आए थे उसी के साथ वापस जा रहे हो। यह सांसारिक वस्तुएँ मेरे किसी काम की नहीं। अपना अहम यहाँ त्याग कर जाओ, वही मेरे लिए सबसे बड़ा उपहार होगा।''

महात्मा बुद्ध का यह कथन सुनकर सेठजी उनके चरणों में नतमस्तक हो गये। भीतर समाया हुआ सारा अहंकार अश्रु बनकर बुद्ध के चरणों को धो रहा था।

गीत

संजय कुमार गिरि
मो०–09871021856

खून हो गया देखो आज
मानव के जीवन का
लाख धर्म निभाया मैंने
प्रकृति के नियम का

धरा काँपी जब पाप बढ़ा
कत्ल हुआ हर रिश्तों का
नातों की कोई परवाह नहीं
दुशमन हुआ भाई–भाई का

माँ का दर्द वो भूल गया
पत्नी की खातिरदारी में
नौ माह जिसने दर्द सहा
वो तड़प रही बिमारी में

सुन्दर प्यारा घर छोटा सा
माँ की पावन ममता जैसा
जहाँ पूजा माँ की होती थी
अब होती केवल कर्कशता

कोमल सुन्दर प्यारा सपना
निर्मल, निर्झर वो था अपना
शीतल पावन गंगा जमुना
बहता पानी जल शीतल।

समीक्षा

निर्मल वर्मा की आस्था और आत्मबोध

सर्वेश पाण्डेय
शोध छात्र हिन्दी विभाग
डॉ० हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर–470003 (म० प्र०)
मो०–09452483702

निर्मल वर्मा की आस्था किसी प्रभुता में प्रार्थनारत या किसी बादशाह की बंदिगी में लीन अकाट्य एक व्यक्ति–लेखक की आस्था नहीं है जिसके पीछे विश्वास करने का एक ही कारण होता है, अर्से से चली आ रही मान्यता। इससे अलग निर्मल वर्मा की आस्था है। जिसमें मान्यता नहीं अपितु संशय की जगह है। इसी संशय संपृक्त आस्था के जरिये किसी के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि ''आस्था विश्वास करने की इच्छा है, किसी चीज में विश्वास करने की इच्छा करना ही उस चीज का अस्तित्व है और यह इच्छा मान्यता से नहीं, सन्देह से निकलती है।'' अपने इस विचार को और पुख़्ता करने के लिए वे मिसाल देते हैं दोस्तोयेव्स्की का। वे बताते हैं कि दोस्तोयेव्स्की ने ईश्वर में स्वयं अपनी आस्था पुष्ट करने की कोशिश में, ईश्वर के अस्तित्व में संदेह करने वाले पात्र किरिलोव की रचना की थी। यह ऐसा है जैसे किरिलोव के अनुभव के जरिये दोस्तोयेव्स्की अपनी संदेह में डूबी आस्था के उस पार जाकर ईश्वर में विश्वास करना चाह रहे थे। संदेह में डूबी आस्था को निर्मल वर्मा लेखक का प्रमुख औज़ार मानते हैं क्योंकि इसी संदेह में डूबी आस्था या विश्वास के घात–प्रतिघात में एक लेखक अपने अनुभव के अर्थ को मापने में समर्थ बनता है साथ ही ज़िंदगी के अन्तर्विरोधों और ठोस सचाइयों को अपनी कृति के माध्यम से व्यक्त करता हुआ 'सम्पूर्णता' की तलाश में लग जाता है। एक तरह से यह आस्था, 'धार्मिक विश्वास की अकाट्यता' से हटकर आस्था है जो तरल है, द्वैधपूर्ण है। एक का दूसरे में आना–जाना है। इसीलिए हर आस्था पर संशय की छाया पड़ती है और हर संशय किसी आस्था की तलाश में रहता है। इतना 'स्पेस' रहता है कि संशय और आस्था बराबर एक दूसरे को काटते रहे और फिर भी एक–दूसरे के साथ रह सकें। निर्मल वर्मा ने दोस्तोयेव्स्की के किरदार किरिलोव का उदाहरण दिया जो संशय और आस्था के घात–प्रतिघात में, द्वन्द्व में, तनाव में ईश्वर की सम्पूर्णता का साक्षात्कार करता है। ऐसा ही घात–प्रतिघात, परमद्वैधता, तनाव हम निराला की 'राम की शक्ति पूजा' में पाते है। जहाँ राम की आस्था पर संशय की छाया पड़ती है और इसी संशय की छाया से होते हुए वह आस्था की तलाश में पूर्णता पर पहुँचकर 'पुरुषोत्तम नवीन' बन जाते हैं। निर्मल वर्मा के लिए 'सम्पूर्णता' की तलाश ज्यादा महत्वपूर्ण है इसीलिए वे कहते हैं कि ''महत्वपूर्ण यह नहीं है कि हमारी कलादृष्टि को जाग्रत करने वाला संसार का वह खास अंश कैसा दीखता है। महत्वपूर्ण है सम्पूर्ण को देखना।''

निर्मल वर्मा मनुष्य की स्वतंत्रता के लिए 'आत्मबोध' आवश्यक मानते हैं लेकिन उनका यह आत्मबोध पश्चिमी सभ्यता के आधार पर नहीं अपितु अपनी परंपरा के आधार पर है। वैसा ही आत्मबोध जैसा महात्मा बुद्ध का 'अप्पो दीपो भव' या महात्मा गाँधी का 'आत्म–साक्षात्कार'। जहाँ 'स्व' का बोध 'अन्य' को दबाकर, उससे स्वयं को अलग कर या उसके बरक्स अनुभव करने में नहीं अपितु 'अन्य' के साथ संलग्न होने में, उससे पहचान बनाने में, उससे संवाद कायम करने में होता है। जहाँ स्वयं अपने से यह प्रश्न किया जाता है कि 'मैं कौन हूँ' और इसी के सहारे दूसरे को जानने की चेष्टा की जाती है। भारतीय और पाश्चात्य आत्मबोध के अंतर को बताते हुए निर्मल वर्मा कहते हैं–''हेगल का कहना था कि एक यूरोपवासी की अस्मिता उसकी आत्मचेतना में वास करती है और यह आत्मचेतना हमेशा दूसरों के विरुद्ध होकर ही अपने को प्रतिष्ठित कर सकती है। किन्तु जिस आत्मचेतना के द्वारा एक भारतीय दुनिया से अपना रिश्ता जोड़ता है उसकी अभिव्यक्ति कभी ऐसे अहम् में नहीं होती जो दूसरे व्यक्तियों के अहम् के विरुद्ध संघर्ष करने में ही अपना अर्थ पाता हो। इसके बिल्कुल विपरीत भारतीय चेतना दूसरों के विरुद्ध नहीं, दूसरों के साथ ऐसे अनुष्ठानों, मिथकों, प्रतीकों और विश्वासों के माध्यम से जुड़ी है जिसे वह समाज के अन्य लोगों के साथ एक स्मृति के द्वारा साझा करता है। समाज के लोगों की यह सामान्य स्मृति ही व्यक्ति के आत्मन् और (सेल्फ) की सीमाओं को बढ़ा देती है। इसलिए एक यूरोपियन का अहम् एक भारतीय के सेल्फ से बहुत अलग है, उसमें दूसरे के प्रति विरोध नहीं बल्कि दूसरे ही उसके अस्तित्व उसके 'मैं' में शामिल हैं।''आगे वह यह भी बताते हैं चूँकि मनुष्य सृष्टि में जीने–बसने वाले 'अन्य' प्राणियों से अपनी तर्कबुद्धि, विवेकबुद्धि और स्वचेतना के कारण अधिक श्रेष्ठ है, स्वाधीन है इसलिए इस सृष्टि के केन्द्र में है। अतः अन्य को कुचलकर 'स्व' की सत्ता स्थापित की जा सकती है। ये यूरोपीय सभ्यता की बुनियादी प्रवृत्ति रही है। इसके विपरीत भारतीय सभ्यता की मान्यता रही है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भी जब मनुष्य के 'जय यात्रा' की बात करते हैं तो वह यूरोपीय मनुष्य के उस अहयात्रा से एकदम भिन्न है जो प्रकृति के विरुद्ध अन्तहीन अभियान चलाने वाले, मनुष्य को ब्रह्माण्ड का केन्द्र मानने वाले, दूसरे व्यक्तियों, समुदायों की अस्मिता के विरुद्ध संघर्ष में ही अपनी अस्मिता का अर्थ तलाश करने वाले हैं। इसीलिए तो कहते हैं "मनुष्य इस विराट ब्रह्माण्ड रूपी शतदल का एक मामूली दल है। कौन कह सकता है कि विकसित मानवता महाकाल–देवता की किसी विराट योजना का एक नगण्य अंग है।''

निर्मल वर्मा की आस्था और आत्मबोध के जरिये सम्पूर्णता तक पहुँचने की प्रक्रिया को गाँधी जी से जुड़े एक प्रसंग द्वारा समझा जा सकता है। एक बार एक औरत अपने बच्चे को लेकर गाँधी जी के पास आती है और कहती है– बापू, ये मेरा बेटा बहुत ज्यादा गुड़ खाता है। मेरे मना करने पर भी नहीं मानता। आप मना करेंगे तो मान जायेगा। थोड़ी देर बाद गाँधी जी बोलते हैं कि

ठीक है, एक महीने बाद आना। एक महीने बाद फिर वह औरत अपने बेटे को लेकर गाँधीजी के पास जाती है। गाँधी जी उस बच्चे को अपनी गोद में बिठाते हैं फिर दुलार करके कहते हैं कि बेटा, ज्यादा गुड़ खाना बुरी आदत है इसे छोड़ दो। छोड़ दोगे न.....। लड़का उत्तर देता है–हाँ। फिर औरत अपने लड़के को लेकर चली जाती है। कुछ दिन बीतने के बाद फिर आती है और कृतज्ञता के भाव से कहती है कि बापू मेरे लड़के ने गुड़ खाना सचमुच छोड़ दिया। लेकिन एक बात समझ में नहीं आयी। बस इतनी सी ही बात कहने के लिए आप ने एक महीने का समय लगाया। तब बापू कहते हैं कि जब तुम अपने लड़के के साथ पहले पहल मेरे पास आयी थी उस समय मैं खुद गुड़ खाता था और मैं जब खुद खाता था तो फिर मना कैसे कर सकता था। मैंने जब तुम्हें एक महीने बाद आने को कहा तब यह प्रण ले चुका था कि इस एक महीने में मैं गुड़ खाना छोड़ दूँगा।

गाँधी जी से जुड़ी यह एक छोटी सी घटना है, लेकिन गाँधी जी के विराट व्यक्तित्व को समझने में मदद मिलती है जिससे वे दूसरे से संलग्न होकर ही 'पूर्णता' को प्राप्त हो सके। क्या वे उन एक महीने में आत्ममंथन की पीड़ित अंतः प्रक्रियाओं से अपने आप को नहीं गुजारा होगा जहाँ एक बच्चे की मासूमियत, निश्च्छलता पर बिना आँच आये उसे एक बुरी आदत या फिर पाप से दूर किया जाय? क्या अपने ऊपर व्यक्त की गयी आस्था को लेकर उनके अंदर संशय के बीज नहीं उमड़े होंगे? क्या संशय और आस्था के इस घात–प्रतिघात में गाँधी जी निर्मम आत्मालोचक नहीं बने होंगे जहाँ कि आत्मबल या सत्याग्रह प्राप्त कर सकें और 'पूर्णता' की ओर अग्रसर हो सके। क्या 'पूर्णता' की अग्रसर होने के क्रम में उनका साक्षात्कार हमारी परम्परा के उन अदृश्य 'आंतरिक लय' से नहीं हुआ होगा जो हमारे जीवन के बहाव को, उसकी धारा को, उसकी गति को प्रभावित करते हैं? साही ने गाँधी जी के इस पूर्णता की ओर संकेत करते हुए कहा है–''गाँधी जी हिन्दुस्तान के ही इसीलिए नहीं थे कि वे हमारे विचारों और आदर्श के प्रवक्ता थे बल्कि उनका जोड़ इतिहास के साथ कहीं और भी गहरा था, वे हिन्दुस्तान की ज़िंदगी की 'रिद्म' की अभिव्यक्ति थे –इतनी पूर्णता के साथ, जो उस युग में किसी और को प्राप्त नहीं थी; और आगे भी किसी को हो सकेगी, यह कहना कठिन है।''

निर्मल वर्मा की मुख्य चिंता यह है कि 'संलग्नता के सर्वव्यापी बोध' जो हमारी परंपरा की खूबी थी, औपनिवेशिक शासन के कारण उसमें दरार आ गयी। वे कहते हैं ''मुझे लगता है कि जैसे मेरी चेतना के बीचों–बीच एक फाँक खिंच गई है, एक तरफ आधुनिक अनुभव हैं, जो मेरे वास्तविक यथार्थ को प्रतिध्वनित करता है–दूसरी तरफ अखण्डित सम्पूर्णता का अनुभव है, जिसमें मेरी संस्कृति का स्वप्न छिपा है– और बीच में कोई ऐसा धागा नहीं है जो मेरे वस्तु–अनुभव को मरे स्वप्न–अनुभव से जोड़ सके– हालाँकि दोनों ही मेरी समकालीन चेतना के सच्चे और प्रमाणित पहलू हैं।'' यह उद्धरण आधुनिक भारतीय चित्त के द्विभाजक को तो व्यक्त करता है साथ ही अपनी परंपरा की व्याख्या करते हुए उसके वर्तमान द्वन्द्व को भी परिभाषित करता है। निर्मल वर्मा के लिए परंपरा कोई अतीत की वस्तु नहीं है, यह सदैव एक जीवंत धड़कन की तरह हमारे भीतर रहती है, इसलिए वह निरन्तर वर्तमान है, वह अपनी 'तात्कालिकता में शाश्वत है।' उनके लिए परंपरा कोई एक अवधारणा नहीं अपितु अनुभूति है– 'संलग्नता के सर्वव्यापी बोध' की अनुभूति। कुछ इसी तरह के विचार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी व्यक्त करते हुए कहते हैं ''मुनष्य ने एकतत्व की अनुभूति की ओर दृढ़ता से क़दम उठाया है, लेकिन यह अनुभूति अद्वैत अनुभूति के समान नहीं है। आज केवल आवश्यकता की चोट खाकर मनुष्य बच निकलने के लिए एक रास्ता भर खोज निकाला है। विचारशील लोग अब भी चिन्तित हैं कि इस मोड़ के अंतिम किनारे पर पहुँचने के बाद क्या होगा। व्यवहारवादी लोग कहते हैं अभी का अभी देख लेते हैं, बाद का बाद में देखेंगे। परन्तु यह उत्तर बहुत अच्छा नहीं है। अंतिम विश्लेषण के बाद यह आत्म–वंचना की कोटि में ही आता है।''

आचार्य द्विवेदी जी के अनुसार आत्म–वंचना अर्थात आत्मबोध के अभाव में अद्वैत कोटि की अनुभूति असंभव है। यह 'अद्वैत अनुभूति की कोटि की अनुभूति' वही है जिसे निर्मल वर्मा ने 'संलग्नता का सर्वव्यापी बोध' कहा है।

निर्मल वर्मा अपने चिंतन में 'स्मृति' को प्रमुख तत्व के रूप में लाते हैं। वस्तुतः वे स्मृति के जरिये ऐतिहासिक समय की एकरेखीय गति को तोड़ते हुए, लगभग उसका प्रत्याख्यान करते हुए अपने आत्मबोध तक पहुँचते हैं। उनके लिए यह स्मृति कोई रोमानी स्मृति नहीं है बल्कि वह है 'जिसकी सामूहिकता के घेरे में हर कलाकार दूसरे से जुड़ा है।' इसलिए निर्मल वर्मा कहते हैं कि ''लेखक चाहे अपने अनुभव में अकेला हो, अपनी स्मृति में नहीं, जो अनुभव को 'बुलाती' है, उसे रचना में बदलती है–जिसकी सामूहिकता के घेरे में ही कलाकार दूसरे से जुड़ा है।''

आज स्मृतिहीनता के इस युग में स्मृति का प्रश्न जरूरी है इसीलिए कवि चन्द्रकांत देवताले भी कहते हैं–

'एक दिन क्षमा माँगनी होती है
तुम्हारा जीवन कैसे गुज़रा यह दीगर बात होगी
याददाश्त पर निर्भर होगा बहुत कुछ'

निर्मल वर्मा पश्चिम के 'इतिहास' को मानने से इंकार करते हैं– ''जिस विशिष्ट अर्थ में हम यूरोपीय सन्दर्भ के इतिहास का उल्लेख करते हैं, जहाँ वह जीवन के विभिन्न मोड़ों को इंगित करता है, उस अर्थ में भारत का कोई इतिहास नहीं है। महात्मा गाँधी भी इस पश्चिमी इतिहास से इंकार करते हैं ''इतिहास जिस अंग्रेजी शब्द का तरजुमा है और जिस शब्द का अर्थ बादशाहों या राजाओं की तारीख़ होता है।..... 'हिस्ट्री' में दुनिया के कोलाहल की कहानी मिलेगी। इसलिए गोरे लोगों में कहावत है कि जिस राष्ट्र की 'इतिहास' (कोलाहल) नहीं है वह राष्ट्र सुखी है। राजा लोग कैसे खेलते थे, कैसे खून करते थे, कैसे बैर रखते थे, यह सब 'इतिहास' में मिलता है।'' गाँधी जी संकेत करते हैं कि उनके यहाँ इतिहास केवल तथ्यों का समूह है, घटनाओं का क्रम–विवरण है जबकि हमारे यहाँ इतिहास के प्रति नज़रिया भिन्न है। जैसा कि अज्ञेय कहते हैं ''घटना–क्रम के संदर्भ में मानव की अनवरत आत्म–प्रत्य–भिज्ञा ही इतिहास है।... इतिहास–ऐसा होता आया हैं– इतिहास की यह परिकल्पना घटना–क्रम को केवल मानवीय सन्दर्भ नहीं देती, मानव को केन्द्र में रखकर उसके अपने परिवेश के साथ सर्जनात्मक रूप में जोड़ने के उद्यमों का परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करती है।'' हमारे यहाँ इतिहास बोध प्रकृति के नैसर्गिक लय से प्राप्त किया गया है। निर्मल वर्मा के यहाँ भी इतिहास बोध की यही लय है और इसी लय में

काल को उस अखण्ड धारा के रूप में देखते हैं जहाँ शाश्वत और सांसारिक समय अन्तर्गुम्फित है। जहाँ इतिहास और मिथक एक हो जाते हैं। जहाँ इतिहास कभी–कभी प्रकृति में बदल जाता है, उसी तरह प्रकृति भी इतिहास में बदल जाती है। जहाँ गंगा में इतिहास है और इतिहास में गंगा बह रही है। इसीलिए निर्मल वर्मा कहते हैं ''खँडहरों के बीच घूमते हुए मुझे कभी–कभी लगता है कि ''वैसा अनुभव आज भी असम्भव नहीं है''। हमारे बीच दो चीजें ऐसी हैं जिनके सामने, जिन्हें छूकर हम अपने साधारण क्षणों में भी इतिहास की चिरन्तनता और प्रकृति–जो शाश्वत है–उसकी ऐतिहासिकता दोनों को एक समय में एक साथ अनुभव कर सकते हैं। अजीब बात यह है, ये दोनों चीजें अपने स्वभाव में एक–दूसरे से बिल्कुल उलटी हैं– एक–ठोस और स्थायी दूसरा–सतत् प्रवाहमान हमेशा बहनेवाली, पत्थर और पानी। किन्तु दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं, दोनों के सामने हम सहसा अपने से परे चले जाते हैं, एक ऐसे काल–खण्ड में पहुँच जाते हैं, जब हम नहीं थे (खँडहरों के सामने), जहाँ हम खत्म हो जाएँगे (बहते पानी को छूते हुए)। पत्थर और पानी दोनों के सम्मुख यह अनुभव होता है कि हम उनके गवाह नहीं हैं, वे हमारे गवाह हैं। हम उनके अस्तित्व को नहीं देख रहे हैं, वे हमारे बीतने को देख रहें हैं। यह अनुभव हमारे उस आधुनिक बोध को कितना धक्का देता है, जहाँ हम संसार के साक्षी होने का दम्भ भरते हैं, जबकि हम स्वयं इतिहास से त्रस्त हैं! एक त्रस्त गवाह की गवाही कैसी? वह न इतिहास रच सकता है, न इतिहास का अतिक्रमण कर सकता है–जिससे कविता जन्म लेती है।'' जब इतिहास और प्रकृति दोनों अलग–अलग नहीं है, दोनों का एक–दूसरे में आना–जाना रहता है तब फिर मृत्यु और जीवन में भेद कैसा! निर्मल वर्मा लिखते हैं– ''पुराने स्मारक और खँडहर हमें उस मृत्यु का बोध दिलाते हैं जो हम अपने भीतर लेकर चलते है। बहता पानी उस जीवन का बोध कराता है, जो मृत्यु के बावजूद वर्तमान है, गतिशील है, अन्तहीन है।'' वस्तुतः निर्मल वर्मा मृत्यु में ही जीवन के अर्थ की तलाश करते हैं। मृत्यु की सहज स्वीकारता ही जीवन को जी भर जीने के लिए प्रेरित करती है और यही जीवन का उत्सव है, उल्लास है। निर्मल वर्मा अपनी डायरी में लिखते हैं– 'हर रोज कोई मेरे भीतर कहता है, तुम मृत हो। यही एक आवाज़ है, जो मुझे विश्वास दिलाती है, कि मैं अब भी जीवित हूँ।' मृत्युबोध की सहज अनुभूति के कारण ही जीवन के प्रति ऐसा उल्लास भाव कवि केदारनाथ सिंह के यहाँ भी मिलता है–

रेत पर
एक लाश रखी थी
एक पके खरबूज की खुशबू
फैली थी रेत पर.....
ऊपर कौए मडरा रहे थे
और नीचे–
काँपते हुए जल में
अमरता की छपाछप होड़ मची थी.....
लाश टुकुर–टुकुर देख रही थी
जीवन का
एक अद्‌भुत उत्सव
मनाया जा रहा था
रेत पर

भाव–चिंतन के इस आलोक में हमारा मिथकीय किरदार भी खुल जाता है, जहाँ शिव की जटा में गंगा का निवास वस्तुतः मृत्यु के देवता की जटा में जीवन की प्रतीक गंगा का निवास है। महाभारत का यक्ष–युधिष्ठिर संवाद जहाँ यक्ष सवाल करता है–संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? युधिष्ठिर जबाव देते हैं– आदमी रोज़ अनेकों को मरते देखता है फिर भी सोचता है कि हम अमर रहेंगें। यही सबसे बड़ा आश्चर्य है। यह अमरता पर आश्चर्य वास्तव में जीवन के उत्सव, उल्लास की ओर संकेत करता है क्योंकि यहाँ मृत्यु को सहज स्वीकारता है। हमारे यहाँ मृत्यु को जीवन का सौन्दर्य माना जाता है। यह दृष्टिकोण पाश्चात्य से एकदम भिन्न है जहाँ मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की कोशिश में करोड़ो डालर महज इस खोज में खर्च किए जाते हैं कि कैसे कोई 'कैप्सूल' बनाया जाए जिसके द्वारा आदमी हमेशा जिन्दा रह सके। उनके यहाँ मृत्यु के प्रति वह स्वाभाविक स्वीकार्यता नहीं मिलती है जो हमारी परंपरा का अभिन्न हिस्सा है। वे इस बात को भूल जाते हैं कि जीवन में कुछ भी अनिवार्य नहीं है–सिवाय मृत्यु के। ऐसा जीवन जिसमें मृत्यु नहीं है, जीवन को वीभत्स बना देती है।

आज के समकालीन समाज में जहाँ सत्ता एवं व्यावसायिक संस्थाएँ अराजकता को जन्म दे रही है, जहाँ मनुष्य व्यस्त होने पर भी एक 'क्लिक' पर पूरी दुनिया से साक्षात्कार कर लेता है सिवाय अपने, जहाँ युद्ध भी कुशल प्रबंधन का विषय बनता जा रहा हो, जहाँ झूठ को सच का लिबास पहनाकर चारों–ओर पेश किया जा रहा हो, जहाँ बाजार एवं विज्ञापन के 'महावशीकरण मंत्र' ने मनुष्य को एक पिंजड़े में कैद कर लिया गया हो। उसे खुद ही नहीं मालूम कि वह कहाँ है, ग़ालिब के शब्दों में–'हम वहाँ हैं जहाँ से हमको भी/कुछ हमारी ख़बर नहीं आती', और तो और इस पिंजड़े से उड़ना एक बीमारी सा लगने लगा है।' ऐसे परिदृश्य में निर्मल वर्मा एक दृष्टि देते हैं जो मनुष्य को हर कीमत पर 'स्वतंत्र' देखना चाहती है और यह स्वतंत्रता 'आत्मबोध' के जरिये ही संभव है।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. शब्द और स्मृति – निर्मल वर्मा, पृ. 28
2. वही, पृ. 30
3. ढलान से उतरते हुए – निर्मल वर्मा, पृ. 108
4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली – 9, पृ. 364
5. छठवाँ दशक – साही, पृ. 271
6. ढलान से उतरते हुए – निर्मल वर्मा, पृ. 112
7. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली – 9, पृ. 265
8. शब्द और स्मृति – निर्मल वर्मा, पृ. 22
9. आग हर चीज में बतायी गयी थी– चंद्रकांत देवताले, पृ. 19
10. शताब्दी के ढलते वर्षों में – निर्मल वर्मा, पृ. 131
11. हिन्द स्वराज – महात्मा गाँधी, पृ. 59
12. केन्द्र और परिधि – अज्ञेय, पृ. 49
13. शब्द और स्मृति – निर्मल वर्मा, पृ. 128
14. वही, पृ. 130
15. धुंध से उठती धुन – निर्मल वर्मा, पृ. 186
16. अकाल में सारस – केदारनाथ सिंह, पृ. 40

दो ग़ज़लें

ज़हीर कुरेशी
भोपाल (म.प्र.)
मो०–09425790565

अंकुरण के साथ धरती खुश हुई
माँ का पद मिलते ही लड़की खुश हुई

भाग्य को रोती थी जो गोदाम में
झील में उतरी तो कश्ती खुश हुई

गीत गा कर नाचने के दृश्य पर
ढोल, तबला और डफली खुश हुई

क्यों हुई थी, ये उसी से पुछिए
मुझसे मिलते साथ पगली खुश हुई

हो गई थी जो विजन दंगों के बाद
लोग फिर लौटे तो बस्ती खुश हुई

माँ ने छाँटीं और बीनीं चिन्दियाँ
गाँठ के खुलते ही गठरी खुश हुई

प्यास से अभिशप्त रेगिस्तान पर
झूम कर बरसी तो बदली खुश हुई।

2.
जो अन्य लोगों के अनुभव उधार लेते हैं
कटार, वो कभी खुद को भी मार लेते हैं

हमारे पास भी आती है ग़म की भीड़ कभी
हम अपने–आप को ग़म से उबारलेते हैं

कुछेक लोगों को मुश्किल है बात समझाना
जो एक बात के मतलब हज़ार लेते हैं

प्रशंसकों की जरूरत उन्हें कभी न रही
वो अपनी आरती खुद ही उतार लेते हैं

जुबान रहती है जैसे बत्तीस दाँतों में
हम उस तरह भी समय को गुज़ार लेते हैं

ये पाप–कर्म न अपराध में बदल जाए
लोग अपने मन में यहाँ तक विचार लेते हैं

वो करते रहते हैं संघर्ष कल्पनाओं में
वो कल्पनाओं में ही जीत–हार लेते हैं।

ग़ज़ल

केशव शरण
सिकरौल, वाराणसी
मो०–09415295137

यही तो एक बचा था जहान घूम लिया
ये नष्ट दुर्ग नदी का विरान घूम लिया

धुंधलती शाख़ पे बैठा परिन्द गाता है
कि हादसों से भरा वन–वितान घूम लिया

मैं तीनों लोक तो जानूं नहीं मगर लगता
तुम्हारे साथ समूचा जहान घूम लिया

टहलना हो गया दिन–भर का सुबह में उनका
निकल के गेट से इक–दो मकान घूम लिया

कहाँ मैं अपने इलाके की भूमि से अनजान
कहाँ तो तुमने अखिल आसमान घूम लिया

सुरम्य दृश्य, धरोहर, तपास, रूमानी
कई तरह से जगह है महान घूम लिया

समय वो आता कि मुश्किल है दो क़दम चलना
अभी है जोश अभी हूँ जवान घूम लिया।

डॉ० मनाज़िर आशिक हरगानवी
भागलपुर

सोचता हूँ लग गई ये कैसी बीमारी मुझे
काटने को दौड़ती है चारदीवारी मुझे

नाम की ख़ातिर लुटा बैठा हूँ जो कुछ पास था
खोखला करके रही आख़िर ये सरदारी मुझे

टूट कर फल मेरी झोली में गिरेगा एक दिन
यूँ भी बहलाती रही है सहल–अंगारी मुझे

ख़ौफ़ के आसेब नाच उठे हैं मेरे हर तरफ़
और क्या देती सियह रातों की बेदारी मुझे

जिस गुनाह में वे भी थे मेरे बराबर के शरीक
मिल रही है उसकी आख़िर क्यों सज़ा सारी मुझे

मैं था आशिक जगमगाते आइनों का एक शहर
रेज़ा–रेज़ा कर गई दुशमन की बमबारी मुझे।

संस्मरण

साँसें

डॉ० संदीप अवस्थी
66/26, न्यू कॉलोनी, रामगंज (अजमेर)
मो०–07737407061

अजमेर के मेरे वातानुकूलित वार्ड में हल्की–हल्की रोशनी थी पर फिर भी नींद का नामोनिशान नहीं था। बार–बार सामने लेटे पिता की ओर निगाह चली जाती थी। कई नलियां–ग्लूकोज, यूरीन, ऑक्सीजन–मास्क एवं विशेष हल्के पीले रंग की दवा भी उनके सूखे दुबले हाथों में लगी हुई थी। सायंकाल को तो उस महंगे मिशनरी नर्सिंग होम की प्रशिक्षित नर्स को पिता के सूखते हाथों में दस जगह सुई कोहनियां तक लगा लगाकर नस तलाशनी पड़ी थी तब वह सुई उनके शरीर में लगा पाई थी। कैसे पिता के चेहरे पर दर्द भरे कराह के भाव थे, कैसे वह अपने दर्द को सूनी–सूनी पहचान रहित आंखों से सह रहे थे। पिछले दो दिनों की जद्दोजहद के बाद आज पिता शांति से सो रहे थे।

याददाश्त चली जाना (मेमोरी स्ट्रोक) उन्हें घर पर ही अचानक हुआ था। जब मां के पास बैठे–बैठे वह अजीब सी बातें करते रहे थे। न जाने कौन सी दुनिया भर की बातें। जिसमें गांव की चिन्ता थी। खेतों के सूखने और बिकने का दर्द था, टूटता मकान, बहन की अचानक मौत। उन सबको, बीते बरसों में जब यह हुआ था, वह मजबूत चट्टान को सह गये थे। वह बातें अब बरसों बाद उनके अवचेतन में जमा थी और निकलती जा रही थी। उन्होंने हमें भी पहचानने से इंकार कर दिया।

सारी रात वह लगातार बोलते रहते। दुनिया जहान की बातें, मां संभालते–संभालते कुर्सी पर सो गई थीं। वह जागते रहे। उनकी आंखें नींद भूल गई थी। न्यूरो फिजिशियन दिमागी डॉक्टर को अगले दिन सुबह ही घर दिखाया था। विभिन्न जांचों के बाद उन्हें इस महंगे नर्सिंग होम में भर्ती कर लिया गया था। दो दिन बेहद परेशानी से रहे। तभी अचानक यह घटना हो गई।

आईसीयू के फर्श पर ही रात्रि को वह वृद्ध ग्रामीण लेता, उधर उसकी वृद्ध पत्नी अपने दस वर्ष पोते के सिहाने बैठी होती। पता नहीं कौन सी जानलेवा बीमारी थी कि बिना ऑक्सीजन मास्क के उस बूढ़े के फेंफड़े ही काम नहीं करते थे। एक रात जब वह सूखी रोटी मिर्ची के सवा खाते शून्य में चुपचाप देख रहा था। संभावित अनहोनी के लिये अपने को तैयार कर रहा था। मैंने पूछा, ''क्या हुआ बाबा आप चिन्ता न करें, सब ठीक हो जायेगा।'' वृद्ध ने धुंधली आंखों से मुझे देखा और दर्द भरे स्वर में बोला। ''क्या पता बाबूजी, हम लाचार गरीबों की थोड़ी सी भी खुशी उस उपर वाले से देखी नहीं जाती।'' मैं सिर झुकाये सुनता रहा, इका मां बाप खुली मजदूरी करस्यां। ई टाबरो न जाणे कौन सी बीमारी पिछले माह लागली कि हेसतो खेलतो खाट पकड़गयो। घणो इलाज करायो पर फायदो कोनि। फिर ईक दागदर को पता चल्यो तो इहां ले आयो।''

मेरे मन में उठा ''शायद यहां बीपीएल ग्रामीणों को छूट मिलती हो।'' उसका बेटा मेरे मन की बात भांप गया, बोला, ''बाबूजी, यहां चार दिनों में म्हारो ही बीस हजार रुपियो खर्च हो गयो। घर के जेवर बर्तन बिकबा री नौबत आ गी।''

सुबह डॉक्टर के राउंड हुये। पिताजी गहन निद्रा में थे। शायद दवाइयों का असर था। मैं उन्हें गौर से देखता रहा। कल शाम को ही जब उन्होंने द्वार पर ही शौच की थी तो अपने हाथों में मैंने साफ करते देखा था कि उन्हें चेतना ही नहीं थी। फिर कुछ देर के लिये मैं घर गया जब छोटा भाई आ गया था। सायं आठ बजे वापस आया तो देखा आईसीयू में पिताजी के दोनों हाथ पैर बेड से बांध रखे हैं। अब बोला था कि वह बार–बार ग्लूकोज, दवाइयों को शरीर में लगी सुईयां हटा देते हैं। पांव मारते हैं। पास में हमारे पारिवारिक मित्र बंसल जी ने भी कहा बड़ी मुश्किल से बांधा है। हंसते घुमाते, हर इच्छा पूरी करते, हृष्ट पुष्ट पिताजी पल भर में मेरी आंखों के सामने कौंध गये। चादरें और रस्सियों में बंधे हाथ पांव से वह चुपचाप लेटे, बेबस से छत को देख रहे थे। सख्त आवाज में मैंने कहा इनके हाथ पांव खोल दो सिस्टर।'' अभी यह फिर कुछ करेगा सिस्टर ने डराया– हमारी जिम्मेदारी नहीं।'' ''मैं संभालूंगा। मैंने स्थिर आवाज में कहा और आगे बढ़कर हाथ खोलने लगा। खुलते ही पिताजी ने दो चार हाथ चलाये। प्रतिरोध था अपनी हालत, बेबसी पर। मैंने मुस्कुराते हुये सहा। फिर पिताजी धीरे–धीरे सो गये तब से अब सुबह तक सो रहे हैं।

डॉक्टर देख गया, ''ठीक है शाम तक सबको पहचानेगा'' कहकर वह चला गया। तभी शोर हुआ, देखा वही सामने वाले कॉमन रुम में एक ग्रामीण बच्चे को डॉक्टर ने रिलीव करने को कह दिया था और उसके परिजन कह रहे थे, ''यह ठीक नहीं हुआ। हम कहां जाये यहां से?'' ''सरकारी अस्पताल जाओ बाबा वहां इसका इलाज पूरा कम खर्च में होगा। यहां बेकार पैसा बर्बाद करने से क्या होगा? वह बूढ़ा व्यक्ति बाहर बरामदे में टूटे वृक्ष सा पड़ा था। बिना ऑक्सीजन मास्क के बच्चा कहां कैसे जायेगा? इतना मजबूर, बेचैन, बेबस पता नहीं भगवान हमें क्यों बनाता है? चाहकर भी उसके लिये मैं कुछ नहीं कर पाया। बच्चे की मां गांव से आ गई थी। वह सिरहने बैठी बच्चे को वात्साल्यता और भरी–भरी आंखों से सहला रही थी। जैसे बकरी अपने मेमने को कसाई के हाथों जाते देखती है वैसे ही। संभावित अंत उसकी मेहरबानी से जल्दी आने वाला था। दस दिन से अपने गांव, घर से दूर, भूखे प्यासे जीने की लालसा में महंगी इलाज करने गरीब, मां, बाप, बाबा, दादी बैठे थे। हंसता, खेलता, बच्चा का जीवन शायद फिर चहचहा उठे। एक घंटे बाद उन्हें डिस्चार्ज कर दिया गया। पांच हजार सुबह तक के और लिये गये थे। एक घंटे की ऑक्सीजन वाला मास्क गले में था। बच्चे की छाती उपर नीचे उठ रही थी। बच्चा उसी बूढ़े व्यक्ति की बाहों में था। वह मेरे सामने से जा रहा था और मैं उससे नजरें चुरा रहा था। काश! मै अपनी सांसें उसे दे पाता।

बेक्ड कविताएँ

मोनालिसा मुखर्जी
मुम्बई
मो०–09821582444

कहो कहाँ चले हो

अपनों से दूर, सपनों से दूर
जीवन से दूर या
मृत्यु के पार
सुख दुःख की लुकाछिपी खेलती
वेदना की मलिन सिसकियों के द्वार

मन तो कुछ रम चुका था
भावनाओं का भ्रम हुआ था
एक हँसी कहने को
सहसा कुछ सहने को
मन हुआ था
रंगों में ढलने को तना हुआ था

पर तुमने ही थाम लिया
जाने क्या भाँप लिया
टोक दिया, रोक लिया
मुझको फिर ले चले हो
एक बार फिर
कहो कहाँ ले चले हो।

2.
ढूँढ़ेंगे फिर से एक नई नदी
जो संजोयेगी, अपनायेगी हमें
समेट लेगी खुद में

फिर एक दिन
खोज का अन्त होगा
सब ढूँढ़ लेंगे अपनी अपनी नदी
समा जायेंगे, सिमट जायेंगे
कोई नहीं भटकेगा दिशा हीन–
ठहर जायेंगे सब
ठहर जायेगा सब कुछ

कदाचित् वही प्रलय होगा
दिन होगा
हम सबके अन्त का।

कविता

वह बुजुर्ग

मनोज चौहान
शिमला, हिमाचल प्रदेश
मो०–9418036526

वह बुजुर्ग
चेहरे पर प्रसन्नता
संतोष और शांति की
आभा लिए
दिख जाता था अक्सर
गाँव के किसी भी
रास्ते पर
टहलते हुए

एक अंतराल के बाद
गांव गया
तो चेहरे पर
प्रसन्नता के भाव
तो दिखे
मगर भीतर तक
कचोटता
एकाकीपन
भी झलक रहा था
कहीं

जीवन के अस्सी
से भी अधिक
बसंत देख चुकी
वह आँखें
उजागर कर रही थी
भीतर की
वेदना को

वह मुखिया है
भरे–पूरे
और समृद्ध
परिवार का
कुशलता से निर्वहन
कर चुका है वह
सभी जिम्मेदरियों का
मगर जीवन की
कटु और अटल
सच्चाई को
मानना
नहीं होता
इतना आसान
उम्र के इस
पड़ाव पर
जीवन संगिनी
का विछोह
अखरता है
हमेशा

जीवन के तमाम
सांझे अनुभव
दस्तक दे जाते हैं
अक्सर
मानस पटल पर

गहरी खामोशी लिए
ताकता है वह
शून्य में
और बढ़ा लेता है
कदम
घर की ओर।

गीत

शशिकला झा
वीरपुर, सुपौल
मो०–9471658607

दर्द शहर का

शहर ने कहा तुम सुनो दोस्तों मैं परेशान हूँ
बड़ा है सितमगर यहाँ आदमी मैं तो हैरान हूँ

न जागता न सोता है देखो शहर
किसी के दुःखों में ना रोता शहर
शहर ये मीनारों का बस ढेर है
खुद को बचा लो तभी खैर है
कहे ये शहर मुझसे बचके रहो
मैं तो बदनाम हूँ
बड़ा है सितमगर यहाँ आदमी मैं तो हैरान हूँ

यहाँ लोग जीते है फुटपाथ पर
सरकती है जीवन घुटे राह पर
परिन्दा भी सहमा सा रहता यहाँ
है पत्थर के इन्सां धुआं ही धुआं
नहीं मैं बचाऊंगा तुझको कभी
मैं तो नाकाम हूँ
बड़ा है सितमगर यहाँ आदमी मैं तो हैरान हूँ

भूखा शहर है, नहीं रोटियाँ है
जिस्मों को बेचे यहाँ बेटियाँ है
शहर है ये प्यासों का पानी नहीं
सुंदर बसेरा है नींद नहीं
अपनी समझ से बचा लो खुशी
मैं तो नादान हूँ
बड़ा है सितमगर यहाँ आदमी मैं तो हैरान हूँ

शायद मैं परदेश में हूँ

भीड़ बड़ी पर बड़ा अकेला
लोगों का है रेलमपेला
स्वर्ग शहर है सूना–सूना
मेरे मन को आता रोना
मैं कैसे परिवेश में हूँ
शायद मैं परदेश में हूँ
यहाँ दिखे ना कृष्ण गोपाल
ना ही कोई है चौपाल
नहीं सखा न कोई भैया
कहीं दिखे ना मेरी मैया
मैं कितना अंदेश में हूँ
शायद मैं परदेश में हूँ

वहाँ देश में पैसे कम थे
छोटे–मोटे कितने ग़म थे
सोचा कि परदेश को जाउं
ढ़ेर रुपये लेकर आउं
यहाँ लगा अब रेस में हूँ
शायद मैं परदेश में हूँ

सपने टूटे अपने छूटे
मन से हर चाहत है रुठे
हृदयहीन ये बड़ा शहर
तन से हूँ मैं यहाँ मगर
मन से अपने देश में हूँ
शायद मैं परदेश में हूँ

जितेन्द्र जौहर
रेणुसागर, सोनभद्र
मो०–9450320472

घर का चना–चबेना

अम्मा ने आटे के नौ–दस
लड्डू बाँध दिये
बोलीं, ''रस्ते में खा लेना, लम्बी दूरी है
ज्यों ही गाड़ी छूटी, हाय!
पिता बहुत रोये
ठोस प्रेम का तरल रुप
आँखों से छलकाया पानी
माँ की ममता देख रूँधे गले से बोली
लल्ला हाँथों में कलेजा आया
चिट्ठी लिख देना...
'दही–मछरिया' कहकर मेरे
रस्ते में कोई कुछ खाने को दे मत लेना
गाल–हाथ चूम
समझाया कि सिर पे गमछा बाँध लियो लू में
ज़हरखुरानी का धंधा
चलता है शहरों में
बार–बार पप्लू से गीली, सोच–समझकर चलना, बेटा!
आँखें पोंछ रहीं, बहुत ज़रुरी है।''
दबे होंठ से टपक रही, बोली, रस्ते में खा लेना,
बेबस मंजूरी है, लम्बी दूरी है
बोलीं, रस्ते में खा लेना
शहर पहुँचकर मैंने दर–दर
पिता मुझे बस में बैठाने, की ठोकर खायी
अड्डे तक आये। नदी किनारे बसे गाँव की
गाड़ी में थी देर जलेबी, याद बहुत आयी
गरम–गरम लाये। दरवाज़े का नीम, सामने
छोटू जाकर हैंडपम्प से, शंकर की मठिया
पानी भर लाया। पीपल वाला पेड़ और वह
मुझे पिलाकर पाँव छुये, कल्लू की बगिया
कह 'चलता हूँ... भाया'
तन की तन्दूरी ज्वाला, मुखिया की बातें कानों में
दर–दर भटकाती है, रह–रहकर गूँजीं,
गाँव छोड़के शहर जा रहा है 'घर का चना–चबेना, बेटा!
हूँ, मजबूरी है। हलवा–पूरी है।'
बोलीं, रस्ते में खा लेना, बेटा
लम्बी दूरी है...

कविता

पेड़ों के दर्द

राजीव शर्मा 'राज'
जिला–लुधियाना (पंजाब)
मो०–098786 63900

पेड़ों के दर्द को कम क्यों नहीं करते हम
एक पेड़ तुम भी लगाओ
एक पेड़ हम भी लगाएं
जिस बंजर भूमि पर है मायूसी
हर उस कोने में हरियाली लाएं
कस्में तो खा लेते हैं हम सब
पर उन कस्मों पर क्यों नहीं चलते हम
पेड़ों के दर्द को क्यों नहीं समझते हम...

पेड़ लगाएंगे तो फल भी खाएंगे
लकड़ियाँ तो मिलेंगी ही, छाया भी पाएंगे
जब–जब ये बारिश आएगी
पेड़ों के गीत सुनाएगी
पेड़ों में भी तो जीवन है
फिर पेड़ काटते वक़्त क्यों नहीं डरते हम
पेड़ों के दर्द को क्यों नहीं समझते हम...
हरा–भरा रहेगा आँगन अपना
पेड़ों को काटने वालो कुछ तो शर्म करो
अपने पत्थर दिल को थोड़ा सा नर्म करो
सब को पता है पेड़ ही तो जीवन है
फिर मोम की तरह क्यों नहीं पिघलते हम
पेड़ों के दर्द को क्यों नहीं समझते हम...
पेड़ों के दर्द को कम क्यों नहीं करते हम।

चलो दोस्तों...

चलो दोस्तों, हम सब नशे के खिलाफ क़दम बढ़ाएंगें
इस धरती से नशे का नामों–निशाँ मिटाएंगे
लुटा चुके हैं जो ज़िन्दगी अपनी नशे में
दम तोड़ती उस ज़िन्दगी को, नशे से बचाएंगे
चलो दोस्तों, हम सब नशे के खिलाफ कदम बढ़ाएंगें

नशे की खातिर हम अपना सब कुछ खोते हैं
जब सब कुछ लुट जाता है तो उम्र भर रोते हैं
नशे की वजह से ही सब अपने हमें ठुकराते हैं
अपनों को पाने के लिए, इस नशे को ठुकराएंगे
चलो दोस्तों, हम सब नशे के खिलाफ कदम बढ़ाएंगे

आदत बहुत बुरी है ये, जिसको लग जाती है
मरते दम तक इंसान को पल–पल तड़पाती है
नशे के कारण ही हजारों बीमारियाँ लग जाती है
ज़माने को एक अच्छा इंसान बनकर दिखाएंगे
चलो दोस्तों, हम सब नशे के खिलाफ कदम बढ़ाएंगें

होठों पर मुस्कान होंगी, खुशहाल होगा जीवन
ना कोई बीमारी होंगी, स्वस्थ रहेगा तन–मन
ना नशा करेंगे, ना किसी को करने देंगे
मौत से पहले ना किसी को बेमौत मरने देंगे
ऐ ''राज'' धरती पर एक नशामुक्त जहाँ बनाएंगे
चलो दोस्तों, हम सब नशे के खिलाफ कदम बढ़ाएंगें

माँ

सुरेन्द्र कुमार शर्मा
विजयनगर, जयपुर
मो०–09314445539

दोहे

माँ हर युग की आत्मा, माँ हर युग की शान
जिसके गुण का गान तो, करते वेद पुराण

माँ के गुण का कर सका, अब तक कौन बखान
साँस वही, धड़कन वही, माँ जीवन माँ प्राण

आँखें खोली माँ मिली, पहली–पहली बार
माँ की ममता का मिले, सबको प्यार दुलार

देकर हमको जो जनम, करती है उपकार
माँ का कर सकता नहीं, व्यक्त कोई आभार

जीवन भर देती हमें, वो ममता की छाँव
माँ के आँचल के तले, हैं खुशियों के गाँव

देती हमको है जनम, और दिखाती राहें
गले लगाकर प्यार से, फैला देती बाँहें

कौन चुका पाया यहाँ, माँ का ऋण इक बार
जाने कितने कर्ज वो, देती हम पर उधार

माँ गीता का श्लोक है, माँ पूजा का फूल
चरणों में जिसके मिले, सब धामों की धूल

माँ बिन सूना ही लगे, ये गलियाँ ये द्वार
सूना–सूना सा लगे, यह सारा संसार

माँ ममता की गोद है, और आँचल की ओट
जिसमें हो सकती नहीं, कभी कोई भी खोट

माँ गंगा सी है पुनीत, माँ अमृत की खान
जो करती है जगत में, हम सबका कल्याण

माँ ममता की मूरती, माँ युग का वरदान
जिसके चरणों में रमें, हर युग में भगवान

जो बिन बोले ही सदा, सुनती मन की बात
मगर समझ हम पायें हैं, कब उसके जज्बात

जब भी चलती हवा, आती एक सुगन्ध
ऐसा लगता है हमें, माँ हर पल है संग

आँसू से है लिख रहा, माँ तेरा इतिहास
ज्यूँ–ज्यूँ पढ़ता तुम्हें, बढ़ती जाती प्यास

लेकर कितनों ही जनम, जाया न कर्ज उतार
ऐसी माँ के चरणों में, नमन हजारों बार

गज़ल

मंजुला उपाध्याय मंजुल
पूर्णिया, बिहार
मो०–9431865979

ख़्वाहिशों के बहुत हैं सताए हुए
मुद्दतें हो गईं मुस्कुराये हुए
रोशनी जब हुई अक्स मेरा बना
मेरे क़द से बड़े मेरे साये हुए
मैं रही उनके दिल में समाई हुई
वो रहे धड़कनों में समाए हुए
आँख भी इक समन्दर की मानिन्द है
राज़ अश्कों में लाखों छुपाए हुए
चाँद तारों के मोहताज वे कब हुए
जो थे तिश्नगी के बनाए हुए
एक घर है मेरा दस्त के बीच में
कुछ शहर हैं हवा में बसाए हुए।

2

मुझसे मिलकर निहाल होता है
दर्दे दिल बाक़माल होता है
उनसे मिलने के बाद भी अक्सर
पहले जैसा ही हाल होता है
उनसे मिलने की आरजू भी है
जिनसे मिलकर मलाल होता है
उनको मेरा ख्याल हो कि न हो
मुझको उनका खयाल होता है
जो गुजर जायें हद से हमपर
आप से कब सवाल होता है
इश्क का अवल से क्या मतलब
सोचने से वबाल होता है

अशोक मिज़ाज
मकरौनिया, सागर (म० प्र०)
मो०–9926346785

महकते लफ़्ज़ों को ग़ज़लों में ढाल सकता हूँ
मैं काग़ज़ों से भी खुशबू निकाल सकता हूँ

तू मेरी जेब में रकखे हुए कलम पे न जा
मैं वक़्त आने पे चाकू निकाल सकता हूँ

मेरे इकहरे बदन पर तू कोई तंज़ न कर
दो चार को मैं अकेला सम्हाल सकता हूँ

किसी के रहमो–करम की मुझे ज़रुरत क्या
मैं अपने बच्चों को मेहनत से पाल सकता हूँ

कभी तुझे भी ज़रुरत पड़े, खुदा न करे
दो चार सिक्के तो झोली में डाल सकता हूँ।

आलेख

हिन्दी की चुनौतियाँ

डॉ० जय शंकर शुक्ल
बैंक कॉलोनी, दिल्ली
मो०–09968235647

आज का युग सार्वभौमीकरण का युग है। इस युग में लगभग पूरा विश्व एक गाँव के रूप में तथा देश अलग–अलग टोले जैसे प्रतीत होते हैं। ऐसे में भाषा, देश–काल, वातावरण, कहीं अधिक तेजी से सब कुछ समाहित करने के साथ–साथ सबको प्रभावित करने की ओर तेजी से अग्रसर है। संस्कृतियो के सम्मिलन तथा सभ्यताओं के गुम्फन का यह कालखण्ड पीढ़ियों को जोड़ता भी है। जुड़ाव के अनेकानेक सम्भावित माध्यमों में भाषा भी एक महत्त्वपूर्ण अवयव है। भाषा न केवल वैचारिक आदान–प्रदान तक सीमित है अपितु यह संस्कृतियों के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए भी अतीव आवश्यक है। विगत दिवस समाचार पत्र में छपी एक टिप्पणी हमारी इस बात को प्रमाणित करती है। यथा–अण्डमान निकोबार द्वीप समूह में रहने वाली कबीलाई जातियों के समाप्त होने के जहाँ बहुत सारे कारण हैं, वहीं उनकी भाषा को शेष समाज द्वारा न जानना भी एक महत्त्वपूर्ण कारण हैं। भाषा वाहक है संस्कृति की तथा संस्कृति के विभिन्न अंगों–उपांगो की। किसी भी समाज विशेष में प्रचलित उसके मूल्य, मान्यता, आदर्श व विश्वास के साथ–साथ रहन–सहन, खान–पान, रीति–रिवाज तथा व्यवहार करने के तौर तरीके इन सभी के लिए जो सबसे आवश्यक चीज हैं, वह है भाषा। अर्थात् भाषा किसी भी राष्ट्र, समाज की जातीय अस्मिता से जुड़ी हुई है। ज्ञान का संचय, प्रसारण एवं बृद्धि इन तीनों के लिए जहाँ बहुत सारी चीजों की आवश्यकता है, वहीं भाषा भी इसकी एक सर्वाधिक जरूरी घटक है।

हमारे लेखन का केन्द्र बिन्दु हिन्दी एवं उसकी चुनौतियाँ हैं। सर्वप्रथम हिन्दी भाषा के स्वरूप पर विचार करते हैं। हिन्दी का उद्‌गम संस्कृत से हुआ है। इसकी लिपि देवनागरी है तथा लगभग तीन हजार बोलियाँ हिन्दी परिवार की सहचरी हैं, सदस्य हैं। गांवों में एक कहावत भी है– ''कोस कोस पर पानी बदले, चार कोस पर बानी'' अर्थात् पानी का स्वाद तथा वाणी का स्वरूप, स्थान, काल, देश, वातावरण, परिवेश के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। हिन्दी की लिपि पूरी तरह वैज्ञानिक है तथा इसके बीजों/अक्षरों के स्पंदन में एक विशेष शक्ति का संचार है। यह स्वर को पवित्र करने वाली, उच्चारण में पूर्णतया तार्किक व विशिष्ट है। ये हिन्दी की शक्तियाँ हैं। पर चुनौतियाँ भी कम नहीं हैं, चुनौतियाँ न सिर्फ बाहरी है, आन्तरिक हैं, वरन् ये इसकी स्वरूपागत विशेषता को भी लेकर हैं। हिन्दी की चुनौतियों को हम निम्नांकित बिन्दुओं में व्यक्त कर सकते हैं।

1. आंचलिकता का प्रभाव : आंचलिकता किसी भी भाषा की शक्ति होती है और यही शक्ति ही आज के भूमण्डलीकरण के दौर में इसकी दुर्बलता बनती जा रही है। अंचल विशेष में प्रचलित हिन्दी, बोलने व लिखने में अलग–अलग स्वरूप रखती है। कहीं–कहीं मानक रूप से इतर जो बोलते हैं जिससे अर्थ विपर्यय की स्थिति आ जाती है। उस अंचल विशेष के लोग उसका जो भी अर्थ लगाएँ परन्तु समग्र रूप से अथवा दूसरे अंचल विशेष में उसके अर्थ को लेकर भ्रम की स्थिति हो सकती है। यथा श्री रामचरित मानस अवधी भाषा में लिखा गया है। अर्थात् जन मानस में आज भी अवधी एवं ब्रज को भाषा के रूप में ही माना जाता है; प्रारम्भ के काल से। आज के आधुनिक परिवेश में जो मानक हिन्दी भाषा के स्वरूप निर्धारण में प्रथम पायदान पर है वह जनमानस में बोली (खड़ी बोली) के रूप में अस्तित्वमान है। विचार विनियम में परिवेश प्रमुख होता है, जो न केवल उच्चारण वरन् अर्थ पर भी निर्भर करता है। चूंकि हम चुनौतियों पर केन्द्रित हैं अतः मानसकार गोस्वामी तुलसीदास जी जो कि विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं; की एक चौपाई का उद्धरण देना चाहेंगे जो आज विवाद के शीर्ष पर हैं परन्तु उसके मूल अर्थ की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता है। वह चौपाई है ''ढोल गंवार, सूद्र पशु, नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।'' इस पूरी चौपाई के दोनों चरणों, में आए हुए शब्दों के अर्थ करने से पूर्व हमें इसकी क्रिया ''ताड़ना'' पर स्वयं को केन्द्रित करना होगा। मानस अवधी भाषा में लिखा गया है तथा ताड़ना अवधी का शब्द है, जिसका अर्थ है सीख, प्रशिक्षण, जानकारी, निर्देश। अवधी भाषा भाषी अंचल में आज भी आम बोलचाल में कहा जाता है कि ''हम तोहार बात के ताड़ गए।'' अर्थात् अन्दाजा लगाना, समझना, जानना। उक्त सभी अर्थों में इसका वह अर्थ कहीं नहीं है जो आज कल के चरम पंथियों द्वारा न सिर्फ लगाया जा रहा है वरन् एक आन्दोलन का मुहिम लेकर समाज में विद्रूपता का दंश भी फैलाया जा रहा है।

यह कितनी बड़ी विसंगति है कि भाषा में अंचल विशेष के शब्द का अर्थ मनमाने ढंग से न सिर्फ किया जा रहा है वरन् उस व्याख्या के आलोक में समाज को उसके सनातन रूप से विचलित/विघटित करने का कुप्रयास भी किया जा रहा है। यह एक उदाहरण है, इस तरह के बहुत सारे प्रकरण हिन्दी को समग्र रूप से अपनी जातीय अस्मिता को बनाए रखने की चुनौति दे रहे हैं। मानवीकरण के साथ–साथ आंचलिकता का अनादर रूकना चाहिए तथा एक स्पष्ट निर्देश होना चाहिए, शब्दों के अर्थ क्रम में। यह चुनौती मेरे अपने समझ से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व विशद है, अपने अर्थ स्वरूप तथा आकार में। हरियाणा, हिमाचल, पंजाब, कश्मीर या पर्वतीय क्षेत्र के भाषा व साहित्य में ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग है, जिनके अर्थ करने के पूर्व हमें उस अंचल विशेष के शब्द परिवार से परिचित होना अत्यन्त आवश्यक है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में आटा को चून कहा जाता है जबकि पूर्वी उत्तर प्रदेश में यह चूना है।

अस्तु आंचलिकता के कारण आने वाले स्वाभाविक गतिरोध का परिहार किस तरह से हो यह अत्यन्त विचारणीय प्रश्न है। यदि हम इस पर ध्यान नहीं देते तो यह आत्म हन्यात्मक होगा इसके भाषा–भाषियों के लिए।

2. सार्वभौमिकता का प्रभाव : भूमण्डलीकरण के इस दौर में सभी कुछ सार्वभौमिक होता जा रहा है। इसमें भाषा की मुख्य भूमिका है। सार्वभौमिकरण ने हिन्दी भाषा से लाभ तो उठाया है पर इसके मूल प्रकृति से छेड़छाड़ भी बहुत की है। संसार में विकास की सहचरी बनी एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा को सर्वोपरि मानने से हमें हमारी भाषा के प्रयोग में पिछड़ापन दिखाई देने लगा तथा आधुनिक व उत्तर आधुनिक बनने की होड़ में हम अपनी भाषा का तिरस्कार भी करने लगे तथा हम गलत–सलत ही सही अन्य भाषा को बोलने–सुनने–व्यवहार करने में गौरव मानने लगे। विकास के मानदण्ड की प्राप्ति में अपनी भाषा सक्षम नहीं है यह भ्रामक व खेद जनक विचार है। क्योंकि विश्व समुदाय के विकसित देशों की इबारत उनकी अपनी भाषा ने लिखी है यथा जापान तथा चीन हमारे समीप के देश हैं और विकास की दौड़ व होड़ में इन्होंने हमारे साथ ही शुरूआत की है। परमाणु विस्फोट के बाद जापान तथा ब्रिटिश उपनिवेशवाद से मुक्ति के बाद चीन दोनों की भाषा उनकी अपनी है। इसी तरह जर्मनी, फ्रांस, रूस आदि देशों का नाम लिया जा सकता है जिनके प्रगति की सहयोगी उनकी अपनी ही भाषा रही है।

उक्त विवेचन में हमारे अन्दर समाये भय तथा अतिरंजना ने हमें हमारी भाषा से दूर किया है। सार्वभौमिकता ने प्रारम्भ से हमारे सामने चुनौती रखी है। बड़ी–बड़ी परीक्षाओं में विदेशी भाषा की अनिवार्यता हमारी भाषा की उपेक्षा के कारण बनी, जो प्रचार–प्रसार विस्तार तथा प्रयुक्तता के स्तर पर एक बड़ा गतिरोध रखती है। हमें इस दौर में हिन्दी को और अधिक प्रतिस्पर्धी बनाकर उपयोगिता समेत विश्व समुदाय के समक्ष रखना होगा।

3. राज्य की नीतियों का प्रभाव : राज्य की नीतियाँ किसी भी राज्य में प्रचलित भाषा, विचार, क्रियात्मकता के लिए जिम्मेदार होती है। हिन्दी भाषा के साथ शुरू से ही एक छल किया गया है। आजादी के पूर्व व आजादी प्राप्ति के बाद विभिन्न अधिनियमों के माध्यम से हिन्दी को अपमानित, अप्रचलित करने का एक कुचक्र रचा गया है। इस कुचक्र का परिणाम आज एक विकृति के रूप में सामने आ रहा है। राष्ट्र–भाषा, राज–भाषा के नाम–कार्य–स्थान को लेकर आज तक अनिश्चय की स्थिति बनी हुई है। प्रारंभ में दस वर्ष के लिए राजकीय काम–काज के लिए स्वीकार की गई भाषा अंग्रेजी का दस वर्ष कब तक चलेगा इस पर कोई भी कुछ भी बोलने को तैयार नहीं है। अंग्रेजी ने हिन्दी की अपूरणीय क्षति की है। इसके जिम्मेदारों को तलासने के लिए कहीं बाहर जाने की जरूरत नहीं है, बल्कि बस उनकी तलाश अपने ही देश में करनी होगी। इस खण्ड के अन्तर्गत निम्नलिखित उपबिन्दुओं में अपनी बात को रखते हैं।

(क) कार्यपालिका की स्थिति : कार्यपालिका के समस्त आदेश/निर्देश/संदेश हमेशा ही अंग्रेजी भाषा में निर्गत होते/क्रियाशील होते हैं। यदि कहीं पर हिन्दी में कुछ निर्गत किया भी जाता है तो वह अनुवाद होता है उसी के अंग्रेजी रूप का तथा किसी भी विवाद की स्थिति में अंग्रेजी का रूप मान्य होता है। अर्थात् सोच–विचार का आधार हिन्दी नहीं है वरन् यह अपने ही लोगों के मध्य बेगानी होकर अनुवाद की भाषा बन गयी है, जो कि अपने तात्पर्य के लिए भी मूल निर्गत भाषा पर निर्भर करती है। एक रूपता का अभाव तथा कार्यपालिका को मिले अनुदेश/आदेश का प्रतिपालन उसी की मूलधारा में आबद्ध होना हिन्दी की एक बड़ी चुनौती मानी जा सकती है। कार्यपालिका केन्द्र/राज्य/निकाय जैसी त्रिस्तरीय प्रणाली से बंधी है जहां पर आपके द्वारा अपने लिए भाषा का निर्धारण टेढ़ी खीर है। हिन्दी का अनादर तथा अंग्रेजी का महिमाण्डन अब कुछ नियमों, कानूनों, आचारों से कम भले ही हो गया हो पर समाप्त नहीं माना जा सकता। ऐसे में परिभाषा पर निर्भरता व अपनी भाषा की उपेक्षा हमारे लिए एक दुर्भाग्य की स्थिति है।

(ख) न्यायपालिका की स्थिति : भारत की न्याय पालिका अपने वाद–विवाद, साक्ष्य, निर्देश, अनुदेश, आदेश, सुझाव, सलाह के लिए पूर्णतः अंग्रेजी भाषा पर निर्भर करती है। उच्च न्यायालय तथा सर्वोच्य (उच्चतम) न्यायालय में आपको अंग्रेजी जानना अनिवार्य है, यदि आप अंग्रेजी नहीं जानते तो आपको अपनी भूमिका पर विचार करना होगा। सामान्य से सामान्य अथवा विशिष्ट बात कहने/करने/सुनाने/बताने/जताने के लिए अंग्रेजी में अभिव्यक्ति की विशेषता रखने वाले व्यक्ति की सेवाएँ खरीदनी होगी। पाठक इस जगह पर आ रही चुनौती को चाहे वह जिस विवशता के कारण हो समझ सकता है। आपका वाद जो न्यायालय में प्रस्तुत किया जा रहा है वह आपकी, भाषा में नहीं हो सकता। हिन्दी में आप अपनी बात यदि सहजता से कह सकते हैं, तो भी आप को अंग्रेजी में पारंगत होना होगा या किसी पारंगत व्यक्ति की सेवायें क्रय करनी होंगी। यह चुनौती हिन्दी को उपेक्षा की ओर ले जाती है।

(ग) विधायिका की स्थिति : केन्द्र राज्य सम्बन्धों, विधायी क्रियाकलापों, विधि व्यवस्थाओं तथा विधायी संशोधनों के क्रय में अंगेजी की अनिवार्यता अथवा अपनी भाषा हिन्दी की उपेक्षा इसे अपने मूल से भटकाती है। सचिवालय की कार्य प्रणाली में नियमों/कानूनों के साथ अनुदेशों/संदेशों को हिन्दी भाषा में प्रसारित नहीं किया जा सकता। राजभाषा व राष्ट्रभाषा के चिरकालीन विवाद के मूलभूत से उपजी विवाद–ग्रस्तता अब हिन्दी के अस्तित्व को चुनौती देने लगी है। विधायी–नियमों की व्याख्या, लागू किया जाना भाषायी स्तर पर कम से कम हिन्दी केन्द्रित नहीं है। हिन्दी को यहां पर सीमित, लाचार व कम क्षमता की भाषा मानकर इसकी जगह पर तथाकथित अधिक मजबूत अंग्रेजी को माना जाता रहा है। सम्पूर्ण विश्व में अपनी राजभाषा के इस तरह की उपेक्षा का उदाहरण मिल पाना शायद असम्भव है। पर असंभव को उसके साकार रूप में देखना हो तो भारत की राजभाषा के प्रति राज्य के बर्ताव को देखा जा सकता है।

(घ) प्रतियोगी परीक्षाओं की स्थिति : राज्य/संघ राज्य/केन्द्र के द्वारा आयोजित की जाने वाली प्रतियोगी परीक्षाएँ और इसे आयोजित करने वाली संस्थाएँ जैसे अपने मूल में अंग्रेजी के वर्चस्व को स्थापित करने तथा हिन्दी को उपेक्षित करने के मूल उद्देश्य के लिए बनायी गई है। इसके चयन पद्धति में हिन्दी की उपेक्षा के कई आयाम दृष्टिगोचर होते हैं, कहीं–कहीं ये अंग्रेजी के पर्चे को अनिवार्य करते हैं तो कहीं पर सम्पूर्ण प्रश्नपत्र ही अंग्रेजी भाषा में बनाया जाता है। यानि हिन्दी भाषा के जानकार तब तक राज्य/केन्द्र की सेवाओं में आने के योग्य नहीं हैं, जब तक कि वे अंग्रेजी भाषा को अच्छी तरह से न जान जाएँ। कहीं–कहीं पर प्रश्न पत्र द्विभाषी है वहां पर नेतृत्व कर्ता अंग्रेजी को ही माना जाता है अर्थात् किसी भी विवाद की स्थिति में अंग्रेजी भाषा का लिखा गया रूप मान्य होगा। यही नहीं कहीं–कहीं अनुवाद इतने भ्रामक व हास्यास्पद हो जाते हैं कि कुछ भी कहना मुश्किल होता है। ''लैपटाप'' को ''पाँवसर'' कहना एक उदाहरण है। यह हिन्दी की चुनौतियों का मूल है।

(ड) राज्य पोषित/स्वतंत्र संस्थाओं की स्थिति : केन्द्र व राज्य के द्वारा मान्य, वित्त पोषित विविध संस्थाओं समितियों द्वारा भी हिन्दी की उपेक्षा, दुर्दशा की जा रही है। ये संस्थाएँ कुछ विशेष बनने/दिखने के लिए तथा आम जनता की अपेक्षाओं से अलग अपनी सारी कार्यगुजारी हिन्दी में न करके अंग्रेजी में करते हैं। अपने प्रसार व प्रचार के लिए हिन्दी पर ही निर्भर ये संस्थाएँ/समितियाँ अपने कामकाज में हिन्दी को प्रवेश देने से कतराती है। यह दुहरा मानदण्ड इनके काम काज की पोल तो खोलता है साथ में सरकारी लालफीता साही तथा उनके अनदेखा करने की प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है। अपने–अपने सामान्य व रूढ़िगत लक्ष्यों को प्रतिबद्ध ये समितियाँ हिन्दी के प्रति पूरी तरह अनपेक्षित ग्रंथि से ग्रस्त हैं। ये संप्रदाय, क्षेत्र, भाषा आदि के प्रति रूढ़िगत होकर हिन्दी के तथा इसके प्रचार–प्रसार–प्रयोग के प्रति पूरी तरह असंवेदनशील व विदेशी भाषा के मोह से ग्रस्त है। राज्याश्रय प्राप्त संस्थाएँ अपने मूल में विरोध/अनुरोध के एक कारक बने हैं।

(च) शैक्षिक बोर्डों व शिक्षण संस्थाओं की स्थिति : हिन्दी की उपेक्षा में आज शिक्षा की विभिन्न संस्थाएं मान्यता व वित्त पोषण करने वाले समूह भी जिम्मेदार हैं। त्रिभाषा का नियम कहीं अतीत में खो कर अपनी भाषा के प्रति असहिष्णु हो गए हैं। कारण कुछ भी हो यह असहिष्णुता कष्टकर हैं, लज्जित करने वाली है। कुकुरमुत्ते की तरह उगने वाले अंग्रेजी–माध्यम के कान्वेन्ट स्कूल हमें हमारी जड़ों को काट रहे हैं। बच्चे देवनागरी लिपि तथा भारतीय अंकीय पद्धति को भूलते जा रहे हैं। अब अरसठ, उनहत्तर, सत्तर को अन्तर्राष्ट्रीय अंकों में 68, 69, 70 के रूप में बताना पड़ता है। आधुनिकता व उत्तरआधुनिकता की अंधी दौड़ में आज का समाज अंग्रेजी भाषा या शब्दावली को अपनी वार्तालाप में प्रयोग करना बड़प्पन की निशानी मानता है। विद्यालयों में विज्ञान व कॉमर्स के विद्यार्थी हिन्दी से परहेज रखते हैं। पब्लिक स्कूल तथा कहीं–कहीं सरकारी स्कूल निजीकारणों से हिन्दी की उपेक्षा में सल्लग्न हैं। विदेशी भाषाओं को अधकचरा ज्ञान रोजगार की गारंटी बनता जा रहा है। विश्वविद्यालयों में हिन्दी ऑनर्स की सीटें खाली रह जाती रही हैं तथा हिन्दी में शोध का परिदृश्य भी उतना उत्साह वर्द्धक नहीं है।

4. क्षेत्र एवं भाषा का प्रभाव : हिन्दी भाषा का प्रभाव उत्तर भारत के कुछ राज्यों तक ही सीमित है। ये राज्य भी विभिन्न राजनैतिक व निजी कारणों से हिन्दी की कीमत पर अन्य भाषाओं को राज्याश्रम देते हुए उनके प्रचार–प्रसार के मुहिम में लगे हुए हैं। हम अन्य भारतीय भाषाओं के प्रसार प्रचार व विकास का विरोध नहीं करते हुए सर्वमान्य नियमों के तहत एक दृढ़ इच्छा शक्ति व मानक के आधार पर यदि यह कार्य किया जाए तो और अच्छा होगा। भारत भाषा के आधार पर अपने राज्यों में बांटा गया है। भाषाई प्रतिनिधित्व के आधार पर राज्यों का गठन समय–समय पर उन भाषाओं के प्रति अपने अति लगाव तथा अति आकर्षण के साथ वोट बैंक की राजनीति के चलते हिन्दी का खुला विरोध तक करते हैं। याद रहे ये हिन्दी की जगह पर अंग्रेजी अपनाने को पूरी तरह तैयार है। उपनिवेशवाद के अवसान पर भी यह भाषाई नव उपनिवेशवाद हिन्दी की उपेक्षा व विरोध को एक हथियार तक मानने में परहेज नहीं कर रहें। भीषण नर–संहार व रक्तपात वह भी भाषा को लेकर महाराष्ट्र, आसाम, तमिलनाडु, आन्ध्रा, कर्नाटका समेत अन्य कई प्रदेशों में सुनना आम बात हो गई है। अपने ही देश में दुहरी नागरिकता का दंश झेलने वाले इन हिन्दी भाषा–भाषियों के प्रति असहिष्णु व असंवेदनशीलता आज आम बात हो गई है। असम की परिदृश्य के पीछे रह रही आतंकवादी शक्तियां हो अथवा दक्षिण भारतीय राज्यों की भारतीयकरण राज्य से मान्यता प्राप्त राजनैतिक दल, महाराष्ट्र के कुछ अतिवादी राजनैतिक संगठन हों अथवा पूर्वोत्तर सीमावर्ती कुछ राज्यों में सिर उठा रही राष्ट्र विरोधी ताकतें ये सभी अपने मूल में हिन्दी के प्रति दुर्भावना से ग्रस्त है तथा हिन्दी की उपेक्षा कर उसके सामने प्रबल चुनौती प्रस्तुत कर रहे हैं। इस चुनौती का सामना करते हुए अपने को सुरक्षित रखने का कार्य हिन्दी भाषा व भाषा–भाषियों को करना ही होगा।

5. संचारक्रान्ति के विकास का प्रभाव : संचार क्रांति ने यूँ तो हिन्दी को इसके विभिन्न आयामों के साथ समृद्ध भी किया है। इसके साथ संचार क्रांति की ही देन है आज हिन्दी की बेवसाईटें, डोमेन, ब्लॉग सहित लाखों किताबें आज नेट पर हैं तथा किताबों की खरीद फरोख्त आन लाईन की जा रही है। ई–बुक के रूप में किताबों की सार्वकालीन उपलब्धता को संचार क्रांति ने एक कार्य के रूप में स्थापित किया है।

इतनी सारी विशेषताओं के बाद भी हिन्दी के समक्ष संचार क्रांति ने कई चुनौतियाँ भी रखी है। अब मैसेज में हिन्दी को भी इसकी अपनी लिपि में नहीं लिखा जाता। इतना ही नहीं कई शब्द अपने मूल रूप में नहीं रह गए तथा कई शब्दों के अर्थ भी बदल गए। पुराने पड़े

शब्द पीछे छूट गए तथा नवीन शब्दों ने आकार ले लिया। ऐसे में हिन्दी को यदि वह समग्रता नहीं मिलती, जिसकी आवश्यकता है तो इसका अस्तित्व आज के युग में खतरे में पड़ सकता है। नये कहन, नई भाषा के साथ–साथ संचार क्रांति ने नए व्याकरण का भी सृजन किया है। हिन्दी को अपने विराट स्वरूपा के लिए अन्य भाषाओं के साथ अपने सम्बन्धों को प्रगाढ़ करना होगा। संचार के साधन यंत्रों के विदेशों में बनने व उनमें भारतीय भाषा व भारतीयता का न होना भी एक बड़ी चुनौती है।

6. अन्य भाषाओं के साहचर्य का प्रभाव : हिन्दी का अन्य भारतीय व विदेशी भाषा में होने वाला साहचर्य भी हिन्दी के लिए महत्वपूर्ण चुनौती के रूप में हैं। विभिन्न भाषाओं की जातीय स्मिता तथा उनके शब्दों के यथावत् ग्रहण करने के लिए हिन्दी को अपना व्यापक स्वरूप नवीन दृष्टिकोण के साथ अपनाना होगा। सामान्य तथा प्रयोग में आ रही चीजों को उनके मूल नामों के साथ अपनाना होगा। बदलते परिवेश तथा मानवीय सरोकारों के नवीन युग में हिन्दी को त्याग व संग्रहण के लिए तैयार रहना होगा। यदि हिन्दी अपने मूल प्रवाह व शाब्दिक संरचना के साथ नए शब्दों के सृजन, गठन, संकलन में तत्पर रहकर पुरातन छोड़ने को तैयार हैं तो हिन्दी अपने लिए उत्पन्न चुनौतियों से निपटने में सक्षम होगी अन्यथा हिन्दी का स्वरूप आने वाले समय में क्या होगा यह कह पाना अत्यन्त कठिन है। संचार क्रान्ति में मोबाईल तथा विभिन्न वार्तालाप के नवीनतम एप्लीकेशन मिलकर बातचीत के नए शब्दावली व भाषा के स्वरूपा का सृजन करते हैं। इस स्वरूप को पहचान कर मान्यता देना हिन्दी के लिए चुनौती है।

7. शैक्षिक व तकनीकी विकास का प्रभाव : आज के दौर में शिक्षा के परम्परागत तथा गैर परम्परागत दो तरह के ध्रुव सृजित हो गए हैं। ये ध्रुव हिन्दी के लिए चुनौतियों की नई श्रृंखला प्रस्तुत करते हैं। आज की शिक्षा में डिग्री, डिप्लोमा के कई नए कोर्स तथा उनका पाठ्यक्रम हिन्दी माध्यम में हो यह चुनौतीपूर्ण है। विज्ञान, संचार, परमाणु अन्तरिक्ष, प्रबन्धन, कालसेंटर, आउट सोर्सिंग, वित्तीय संस्थाएँ, कास्मेटिक्स आदि ने नए व आकर्षक संसार में बहुत कुछ बड़ी तेजी से बदल रहा है। यह बदलाव भाषा में प्रवाह व नएपन को निमंत्रण दे रहा है, जिसके लिए हिन्दी को स्वयं तैयार रखना होगा। अनुवाद में शब्दावली का प्रयोग नवीनतम विधा व तकनीकी शब्दावली का निर्माण अन्य भाषाओं, तकनीकी से उनके मूल शब्दों को अपनाने तथा मान्यता देने का उपक्रम साधना होगा। एक प्रवृति और जिसके बारे में हिन्दी व इसके प्रयोक्ताओं, नियंत्ताओं को ध्यान देते हुए विचार करना होगा; वह है अर्थ व तात्पर्य आधारित हर किसी शब्द, वस्तु, विशेषता का अनुवाद करना। यह प्रवृति छोड़नी होगी। जो शब्द जिस रूप से प्रचलन में है हमें उसका प्रयोग, सेवन उसी रूप में करना ज्यादा अच्छा रहेगा। द्विचक्रिका या लौहपथ गामिनी के स्थान पर साईकिल व ट्रेन ज्यादा प्रभावी सम्प्रेषण को व्यक्त करते है। हिन्दी में इस प्रकार की अतिवादिता से बचना भी एक चुनौती है। इस तरह के कार्य हिन्दी भाषा–भाषियों के प्रति मखौल के भाव ही अधिक बनाते हैं।

8. रोजगार परकता का प्रभाव : कोई भी भाषा ''सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय'' तभी बनेगी जब वह रोजगार परक भी हो। रोजगार परक होने पर भाषा जीवन्त व सर्वग्राह्य कही जायेगी। ऐसी स्थिति में इसका प्रभाव–क्षेत्र बढ़ेगा यह सुनिश्चित तथ्य है। जीवन भर हिन्दी का विरोध करने वाले गैर हिन्दी भाषी राजनेताओं को सर्वोच्च पद के लोभ में हिन्दी सीखते हुए देखा गया है। यह एक मानक प्रतिदर्श है। जो कि अवसर के अनुकूल व्यक्त की सार्वभौम तैयारियों की ओर संकेत करता है। कम्प्यूटर की भाषा तथा उसके संकेत, विज्ञान भी भाषा तथा उसके संकेत, संचार की भाषा व उसके संकेत, खगौल विज्ञान, मिसाईल तकनीकी, प्रबन्धन, कास्मेटिक आदि की भाषा वे उसके संकेतों को आत्मसात करते हुए उनके लिए पृथक शब्दकोश के साथ शब्दावली का निर्माण, प्रयोग, प्रक्रिया को बढ़ावा देने से निश्चित रूप से हिन्दी सर्वजन की भाषा अवश्य बनेगी इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है। हिन्दी की रोजगारपरकता इसे आम आदमी को भी खास आदमियों के साथ जोड़ेगी। यह भाषा रोटी की भाषा बनकर आम आदमी के ज्यादा करीब होगी, उनके लिए उपयोगी होगी।

9. सतही संकीर्णताओं का प्रभाव : हिन्दी का अपने साथ रचने बसने वाली भाषाओं से सम्बन्ध इसके विकास के मानक को सुनिश्चित करते हैं। संस्कृत से अतिमोह व उर्दू के प्रति दुराग्रह शायद हिन्दी को उसके विकास में आगे नहीं ले जायेगी। गंगा–जमनी तहजीब को सतत संचालित कर सर्वग्राह्यता की भाव, भाषा, व्यंजना को समेट कर सदैव नवीन व पुरातन को समग्ररूप से कार्य–व्यवहार व प्रयोग में लेकर चलना हिन्दीको चुनौतियों से मुक्त कर विकास की नई इबारत लिखने को प्रेरित करेगा। विभिन्न भाषा के शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों, कहावतों को स्वयं में समाहित करने से हिन्दी छोटी नहीं होगी बल्कि विस्तृत ही होगी। हिन्दी का फलक विस्तृत हो इसका परचम दिग्दिग्न्त तक लहराएं इसकी आभा युगों को आलोकित करें, इसके लिए हिन्दी को ''सर्वजन समभाव, सर्वविषय समभाव'' को अपनाकर आगे बढ़ना होगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी की समग्रता ही इसकी शक्ति है। आम आदमी की हिन्दी तथा खास आदमी की हिन्दी के अन्तर को मिटाना होगा। तभी हिन्दी चुनौतियों से मुक्त होगी। जो बोलचाल में प्रयुक्त की जाने वाली हिन्दी है वही मानक हिन्दी होनी चाहिए। नहीं तो यह कुछ लोगों तक सिमटकर रह जायेगी। भाव–विचार–संवाद आदि में प्रयुक्त हिन्दी व इसकी शब्दावली को बिना आत्ममुग्धता के स्वीकार कर मान्यता दिया जाना चाहिए। रोजगार परक हिन्दी जन–जन को अधिक सामर्थ्यवान बनायेगी। जन–जन की भाषा, जनमन की भाषा, सर्वजन को अपने आप में समेटने वाली भाषा होने से इसके खिलाफ साजिस करने वाले स्वयं हतोत्साहित होगें, तथा हिन्दी मुक्त रूप से अपने विकास की गाथा स्वयं लिखेगी। इस प्रकार आने वाला समय इस भाषा को लोकोपकारी व समृद्ध, स्वरूप का गवाह बन नए क्षितिज की ओर से भगवान मार्तण्ड की रश्मियों जैसे प्रवाह से हिन्दी को आलोकित करने वाला होगा।

शरद रातें

घने पत्तों पर सजी
कोहरे की बूँदें
ताक रही थीं
बिना पलक झपकाये
सर्द रातें ये...
यू ही बीत जायगी
एक–एक करके

हाथ फैलाकर
कहना चाहती थी
वह नन्ही लड़की
लिये गिली पलकों का साथ
कब तक रूलायेगी
सर्द रातें ये...

इंतजार
उप परी को था
मेरे उस पुराने...
कंबल का
जो मैंने ओढ़ रखा है
उस सर्द रात में

बहुत दिन बाद
जो नन्ही धूप आई थी
कुछ ताप लिया होगा
शायद कुछ ताप लिया हो
उस नन्हे बदन ने
मर रहा था जो
गरीबी की ठिठुरन से
उन सर्द रातो में...

उसका डर

तंग
लचार
गरीबी से
डरता था वह
की कहीं
मोल चुकाना
न पड़ जाये
स्वप्न देखने का भी

बड़े दिनो के बाद
पड़ी सुनाई
चहचाहट गोरैया की
उस जीर्ण
झोपड़ी में
जो जाने कबसे
सुन्न पड़ी थी

शायद
किसी धनिक ने
टाल दिया होगा निर्णय
उस जगह पर
एक शानदार होटल
बनाने का
कुछ दिनों के लिये

दुबला–पतला चेहरा

देखा होगा शायद तुमने
बकरियों का झुंड
और उस झुंड के पीछे
चलता...
दुबला–पतला चेहरा

फटे हाल यों
घर से निकलना
कुछ मजबूरियाँ
जरूर...
रही होंगी
उसकी

कभी चेहरे पर मुस्कान
तो कभी मायूसी
कुछ कहना चाहती है
उसके कन्धे की लाठी
पैरों की टूटी चप्पल
ऐनक पर चड़ी धूल
उसकी हलात और
परिस्थितियों का
खोलती सी लगती है
कच्चा चिट्ठा !!!

दीपक शर्मा 'आत्रेय'
कुरूक्षेत्र, हरियाणा
मो०–8689000597

छोटी आँखों का सपना

कुछ सपने बसते थे
उसके मन में
जैसे किसी घोंसले में
रहते हो चिड़िया के चिचले
और इन सपनों को लगाने पंख
मुसाफिरों के इंतजार में
इस वक्त आ बैठी थी
प्लेटफार्म...
एक उपेक्षित कोने में
साथ में लिये हुए थी
वह दूर...
किसी तलैया से लाया हुआ
निर्मल जल...

उसकी छोटी खुली आंखों में
कहीं विवशता भी थी
इतने बड़े घर को...
चलाने की जिम्मेदारी
जो उस पर थी...
उसके अब्बा के जाने के बाद

औरतें

एक औरत को देखा है मैंने
चलाती हुई हल पकाती हुए रोटियाँ
उड़ाते हुए जहाज
और चलाते हुए गोलिया
हर सूरत–शिरत में
हल खोजना जानती है
तुम दो साथ तो वह
बोलना भी जानती है
लक्ष्मी, इंद्रा, कल्पना
ये इसके अवतार है
न मारो गर्भ में
ये जीवन का आधार है

सौ साल के

इतरा रहा है क्यों सुमन, झूले पे डाल के
काँटों ने ही रक्खा तुम्हें, इतना सम्हाल के
बेदर्द ये दुनिया तुम्हें, जीने नहीं देती
काँटे नहीं होते तो थे जीवन मलाल के
माँ की तरह काँटे तुम्हें हैं गोद में रखे
यह जिंदगी उन्हीं की है देख भाल के
तू सोचता है शूल, मेरे सामने है धूल
रे मूर्ख तेरी जिंदगी है भू–चाल के
सम्मान से सम्मान ही मिलता है जहाँ में
कृतज्ञता से जिंदगी रख ले सम्हाल के
आँधी औ पानी से कभी, तू बच नहीं सकता
फिर गर्व क्या तू कर रहा है रे जमाल के
तू चार दिन का चाँद है या आठ दिन का नूर
काँटों की सी जिंदगी है सौ साल के।

विजय वर्धन
भागलपुर
मो०–
9204564272

कविता

तुम ही बताओ हमें

सीमा असीम
बरेली (उ० प्र०)
मो०–9458606469

ऐसा लगता है
अपना सब कुछ
तुझ पर बार दूँ
कभी नज़र उतारूँ
कभी जी भरके बलाएँ लूँ
माथे पर लगा कर रोचना
तेरी आरती उतार लूँ
बाँध दूँ धागा

मन्नतों का
हर मन्नत पूरी करा लूँ

गले में डाल के गलबाहियाँ
तुझे आँचल में छिपा लूँ

सारी दुनिया की खुशियाँ
तेरी पलकों पर सजा दूँ

मिटाके खुदी को
तुझे खुशियाँ का उपहार दूँ

लाड़, प्यार, उपहार से
तेरा सारा जीवन सवार दूँ
तेरा सारा जीवन सवार दूँ।

2.
सब कुछ कह कर भी लगे अभी कुछ कहा ही नहीं
इतना सुनकर भी लगे अभी कुछ सुना ही नहीं
जी भर कर रोये हम याद करके तुम्हारी
भीतर भरे सागर से एक गागर भर बहा नहीं
दिन भी तपाता कंदील सा आकाश में टंगा सूरज
खुद अपने ही ताप से वह क्यों तपा नहीं
सब कुछ है मेरे पास, क्यों ये दर्द, घुटन, बेचैनी
इतना पाकर भी लगे कुछ पाया ही नहीं
क्या करें अब हम, तुम ही बताओ हमें
न जिया जाता है और मरा भी जाता नहीं

हे देवता किसान

डॉ० राम शर्मा
बागपत, (उ० प्र०)

गौ, गंगा गायत्री के सूत्रधार
खेत और खलियान है जिनके आधार
आज़ादी के बाद जिसने संवारा हमारा चमन
हे किसान देवता! तुझे बार–बार नमन

जगाई अलख बनाया भारत की मिट्टी को सोना
बनाया निर्भर, बनाया निर्भय,
आह्लादित है भारतमाता का कण–कण
दिखाया मार्ग खुशहाली का
बनाया आत्मनिर्भर तन–मन
धन्य है आज भारत का जन–जन
हे, किसान देवता तुझे बार–बार नमन

कविता मेरे साथ

संजय वर्मा ''दृष्टि''
मनावर, धार (म०प्र०)
मो०–9893070756

जब यौवन पर आती
नदियाँ
मछलियाँ तब नदी प्रवाह के
विपरीत दिशा में तैरती
छोटी–छोटी धाराओं पर
चढ़ जाती सीधे
नदियाँ मिलना चाहती
समुद्र से
मछलियाँ देखना चाहती
नदियों का उद्गम
सागर से मिलती जब नदियाँ
लाती साथ में कूड़ा करकट
सागर को बताने
ऐसे हो जाती है दूषित
प्रदूषण फैलाने वाले इंसानों से

जल को स्वच्छ बनाने के लिए
बहकर/कहकर जाती नदियाँ
मछलियों से
बस तुम ही तो हो
मुझे स्वच्छ बनाने वाली और
तुम्हारे सहारे ही
मैं रहूंगी भी कुछ समय जीवित
तब तक
जब तक तुम रहोगी मेरे जल में
मेरे साथ
उन गीली पलकों कि सरद रातें

समीक्षा

मयंक की ज्योत्सना

दयानन्द जायसवाल
मो०–9931240303

'मेरी आवाज सुनो' इस कविता संकलन को भागलपुर के बहुमुखी साहित्य साधकों में एक महेन्द्र मयंक जी ने अपने तेजस्वी व्यक्तित्व से ओजस्वी कविताओं द्वारा हम पाठकों को हिमालय की चट्टानी दृढ़ता, नर्मदा की नरमी, भावुक मन को प्रेरक टीस की शोला और सार्थक जीवन का सम्यक् साक्षात्कार कराया है। बहुआयामी साहित्यकार मयंक की ओर हमारे श्रद्धालु चितवन का आकर्षण सहज स्वाभाविक है इसलिए कि इनकी समस्त लेखन का प्राण एवं तप–तेज का प्राण स्रोत प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मुरझाता नहीं बल्कि और ऊर्जस्वित होकर फूट पड़ता है तथा ये निर्मल हृदयी हमारी मनस्विता के प्रतिनिधि–समवाहक हो जाते हैं।

आज देश में आत्म और अनात्म का संघर्ष छिड़ा है। आत्म तत्व, आस्तिकता, सत्य, अहिंसा, न्याय, धार्मिकता, नैतिकता की ओर खींच रहा है तो अनात्म तत्व उसे नास्तिकता, असत्य, हिंसा, अन्याय, भ्रष्टाचार, अधर्म और अनैतिकता की ओर खींच रहा है। ऐसे मूल्यगत द्वन्द्व में मयंक जी की 'मेरी आवाज सुनो' अंधकार में विद्युत कौंध के सदृश आधुनिक भारत और वृहत्तर विश्व की युद्ध–जर्जर मानवता को सर्वनाश से बचाने के लिए जन–जन में एकता, समता, आपसी विश्वास, परस्पर प्रेम और करूणामय संबंधो की प्रस्तुति है।

'चंदा तारे देख रहें हैं, एक दिल के दो टुकड़े हो,
नफरत की दीबार तोड़ दो, भारत माँ के मुखड़े हो।
फकीर मुल्ला साधु संतो धर्मगुरू का हिन्दुस्तान
नफरत की दीबार तोड़ दो अल्लाह ईश्वर है सुल्तान।

मयंक जी की कविताओं में जो स्वाभाविक प्रवाह है वह इस बात का प्रमाण है कि ये कविताएं अन्तः प्रेरणा से आती हैं, जो मात्र कवि कौशल का ही प्रमाण नहीं है। इनकी पंक्तियाँ सहजता से हमारे कण्ठ में बस जाती हैं। उसमें मालूम होता है कि इनके भीतर बसने वाली वैयक्तिकता प्रायः सबकी वैयक्तिकता से एकाकार रहती है। साधक और कवि में यही भेद है कि जिसने आग को पचा डाला, वह साधक है; जिसने उसके ताप की कथा आरंभ की वह कवि हो गया और कवि दर्द को पीकर चुप नहीं रह सकते; अभिव्यक्ति की बेचैनी, सम्प्रेषणीय का उमंग और कविता में मिलने वाला आनंद उन्हें बार–बार बोलने को लाचार करता है और इनको भी मैं इससे बहुत भिन्न कोटि का नहीं मानता। इनकी कविताओं में शांति की स्थापना के लिए केवल यही आवश्यक नहीं देखा गया है कि हम आंखे मूंदकर अपने शत्रुओं के हृदय में संगीनें चुभोते चले जाँए, बल्कि यह भी हम देखते हैं–अपनी हमदर्दी का कुछ भाग अपने दुश्मनों के लिए भी रख कर खुद अपने आपके विरूद्ध भी लड़ने लगे–

अहिंसक बनो तुम हिंसा मिटेगी,
अपना समझो तुम हुकुमत मिलेगी ।

हर मनुष्य की आत्मा की आंगन में पीपल का एक पेड़ होना चाहिए, जिसकी छाया में आने वालों पर हाथ नहीं उठाया जाय। धूप को चांदनी में बदले की ख्वाहिश, मध्याह्न के जलते हुए आकाश के सान्ध्य सूर्य के गौरीक वसन से ढक देने की चाह, कोलाहल से भरे वातावरण को शांति की शुभ्र चादर से आवृत कर देने की कामना ही कवि मयंकी की विशेषता है। प्रकृति की क्रियाओं के भीतर व्याप्त जिस सनातन नियम का उन्हें पता चला है वह सामंजस्य और सौंदर्य का उदाहरण इनकी कविताओं में लक्षित है।–

'खुशनुमा वादियों का सुहाना सफर
लगी मदीरा भी फीकी
तुम्हारे अंदर

इनकी ओजस्वी वाणी ने प्रकृति में शक्ति का संचार किया है। ये प्रकृति निरूपण क्षेत्र में कभी दार्शनिक बन जाते हैं और कभी भावुक, कभी अनवरत चिंतक। अतिशय प्रेम तथा भक्ति की पवित्र भावना इनकी अंतरात्मा पुकार उठती है। ये कभी प्रकृति को मस्त, कभी संतप्त कभी प्रफुल्लित और उल्लास तो कभी अनुरागपूर्ण देखते हैं। इनके प्रकृति वर्णन में मानव और प्रकृति का तादात्म है–

'चंचल नैन चांद सा मुखड़ा कोयल जैसी मीठी वाणी हो,
मेरा घर वृन्दावन मधुवन घूंघट में बहुरानी हो।

कभी–कभी प्रकृति का भयावह रूप देखकर कवि चिंतित हो उठते हैं–

निर्दय हो मां कह गयी मत आना बेटी गांव
घर आंगन खलिहान भी धारा में बह गया ठांव'।

आधुनिक काल में रहस्यवाद की उस पुरातन प्रवृति के दर्शन होते हैं परंतु अन्तर इतना है कि यह रहस्यवाद कबीर और जायसी परंपरा से न आकर प्रकृति के उपकरणों में किसी अदृश्य सत्ता के प्रबल आकर्षण से परिकल्पित हैं और उस कल्पना को कवि इस प्रकार आमंत्रण दे रहा है–

पृथक वेदना जड़ चेतन था, विहँस अधर कल्पित था मन
रोम–रोम पुलकित झूठा था, जल रहा बेचारा चिता मगन।

जब कविता आविष्कार हुआ था, मनुष्य ने उसका विभाजन दो भागों में कर दिया; एक तो जिनका उद्वेश्य केवल आनंद–दान होता है और दूसरी वे जिनमें आनंद के साथ कुछ ज्ञान भी रहता है, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कुछ उपदेश भी रहते हैं तथा दूर पर कहीं, किसी कर्त्तव्य की प्रेरणा भी रहती है। ऐसे तो श्रेष्ठ काव्य हम उसे कहेंगे, जो सभी उपयोगों की सीमा के पार जन्म लेता है जिसकी आवाज हम शिखर की उस ऊँचाई से सुनते हैं, जो कर्म की तलहटी से दूर है, जो उपयोग की सभी सीमाओं से परे है और जहां पहुँने के लिए तर्कों के सोपान नहीं बनाये जा सकते फिर भी हम इनकी कविताओं में लाक्षणिकता, गइराई, सहजता–सरलता तथा संप्रेषणीयता पातें हैं। कविता का उत्स जीवन के शाश्वत स्पन्दन से है। मैं इनकी कल्पनाओं की मंगल कामना करता हूँ।

मेरी आवाज सुनो
'कविता संग्रह'
मूल्य 150/–

आलेख

हाइकु–सम्मेलन में हाइकु कविता पर विशद चर्चा सम्पन्न

डॉ० सुषमा सिंह
न्यू लॉयर्स कॉलोनी, आगरा (उ०प्र०)

आगरा महानगर लेखिका मंच तथा ऑथर्स गिल्ड ऑफ इण्डिया के सम्मिलित तत्वाधान में देश की प्रख्यात हाइकुकार डॉ० मिथिलेश दीक्षित की अध्यक्षता में नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा के मानस सभागार में हाइकु–सम्मेलन का आयोजन हुआ। मुख्य अतिथि के रूप में डॉ० दीक्षित का शाल, पुस्तकें, पुष्पस्तवक भेंट कर अभिनन्दन किया गया। आमंत्रित विशिष्ट अतिथियों में श्रीमती पवित्रा अग्रवाल, कन्हैयालाल अग्रवाल तथा विजय चतुर्वेदी आदि को भी सम्मानित किया गया। नागरी प्रचारिणी सभा के विद्वान पदाधिकारी, आथर्स गिल्ड के विद्वान आयोजकों तथा आगरा महानगर लेखिका मंच की प्रसिद्ध कवयित्री, समीक्षक, चित्रकार सदस्याओं की गरिमामयी उपस्थिति में भव्य समारोह का शुभारम्भ मंच की अध्यक्षा रमा वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा की सभापति सरोज गौरिहार तथा मुख्य अतिथि डॉ० मिथिलेश दीक्षित के द्वारा सम्मिलित रूप से दीप–प्रज्वलन कर किया गया तथा माँ सरस्वती को माल्यार्पण किया गया। समारोह की अध्यक्षता कर रहीं डॉ० मिथिलेश दीक्षित ने मुख्य अतिथि के रूप में हाइकु कविता की प्रारम्भिक पृष्ठभूमि के वर्तमान स्वरूप तक की विकास–यात्रा पर समग्रता से प्रकाश डाला। उन्होंने बताया कि हाइकु जापान की बहुचर्चित कविता का नाम है। वस्तुतः हमारे प्राचीन वाङ्मय और विशेष रूप से बौद्धधर्म के कोरिया, चीन, जापान तक प्रचार–प्रसार के प्रभावस्वरुप इस कविता का आविर्भाव हुआ है। बौद्ध धर्म की महायान शाखा में ध्यान का विशेष महत्व रहा है। यह शब्द जापानी में 'जेन' हुआ। वहाँ के प्रसिद्ध सन्त वाशो ने जिस कविता को साहित्य में प्रतिष्ठित किया, वह हाइकु कहलायी। काव्य–साहित्य में हाइकु को प्रतिष्ठापित करने का श्रेय वस्तुतः सन्त कवि वाशो को जाता है। उसके बाद बुसोन, शिकि आदि ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। तीन पंक्तियों की इस लघु कविता ने अब अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त की है। प्रारम्भ में इस कविता का मूल विषय प्रकृति से सम्बन्धित पदार्थ एवं ऋतु बोधक कथ्य विविध विषय समाहित होते गये। उन्होंने कहा कि भारतवर्ष में कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ ठाकुर, अज्ञेय, प्रभाकर माचवे आदि के अनूदित हाइकु से यहाँ परम्परा आगे चली। प्रो० सत्यभूषण वर्मा के अथक प्रयासों से हिन्दी में हाइकु ने अपनी पहचान बनानी प्रारम्भ की।

भारत में हाइकु काव्य–विधा को प्रचारित–प्रसारित करने का श्रेय वस्तुतः जे०एन०यू० के जापानी भाषा विभाग के प्रोफेसर डॉ० सत्यभूषण वर्मा को है। भारत–जापान मैत्री सम्बन्धों को साहित्य, शिक्षा, संस्कृति और भाषा के द्वारा सुदृढ़ करने के लिए जापान के सम्राट द्वारा 1996 में 'आर्डर ऑफ द राइज़िंग सन गोल्ड रेंज विद्रोज़ेट' सम्मान प्राप्त करने वाले प्रो० सत्यभूषण वर्मा का हिन्दी हाइकु– कविता के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। अनेक वर्षों तक वे जापान में विज़िटिंग प्रोफेसर भी रहे, परन्तु हिन्दी हाइकु–कविता के उन्नयन हेतु अनवरत प्रयासरत रहे। भारत में हाइकु–कविता के विकास हेतु उन्होंने एक हाइकुपत्रक निकाला, जिसमें उस समय तक के अनेक रचनाकारों के हाइकु प्रकाशित हुए थे। इस महान् विभूति की स्मृति में हम लोगों ने उनकी जन्मतिथि को हाइकु–दिवस के रूप में प्रतिवर्ष मनाना प्रारम्भ किया है। हिन्दी में अनेक लब्धप्रतिष्ठ गीतकार, ग़ज़लकार, रूबाईकार हाइकु लिख रहे हैं, जिनमें प्रो० उदयभानुहंस, पद्मविभूषण गोपालदास 'नीरज', डॉ० कुँअर बेचैन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। अमेरिका, जापान, आस्ट्रेलिया, नार्वे, यू०ए०ई० आदि अनेक देशों में प्रवासी भारतीय हिन्दी हाइकु लिख रहे हैं। वेब पत्रिकाओं और इण्टरनेट पर हाइकु पढ़े जा रहे हैं। भारत की विभिन्न भाषाओं में तथा प्रान्तीय भाषाओं में हाइकु लिखे जा रहे हैं। संकलन ग्रन्थों और पत्र–पत्रिकाओं में अब प्रमुखता के साथ हाइकु प्रकाशित हो रहे हैं। समारोह की संयोजिका डॉ० सुषमा सिंह ने भी हाइकु–दिवस की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालते हुए अपने कुछ नूतन हाइकु प्रस्तुत किये–मुखरित हों/नव सरस गान/मेरे मुख से। तथा–तेरे लिए ही/मरने का जी हुआ/और जीने का भी।

डॉ० शशि गोयल ने एक हाइकु प्रस्तुत किया– चीखी दुल्हन/आस–पास के द्वार/हो गये बन्द। उन्होंने हाइकु के वर्तमान स्वरूप पर प्रकाश डाला तथा हाइकु की संरचना तथा कथ्य का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए बताया कि अक्षर क्रम को संयोजित कर एक आन्तरिक गति एवं लय के साथ तुकान्त–अतुकान्त लघु रचना के रूप में हाइकु लिखे जाते हैं, जिनमें गागर में सागर भर देने की क्षमता होती है।

शान्ति नागर ने अपने सामयिक–सांस्कृतिक हाइकु प्रस्तुत किये– कौन आया है/ चौक पूरे हैं सखी/खुशबुओं ने। कमला सैनी ने कहा–कर्म है पूजा/सत्कर्म दीपक से/अँधेरा मिटा। डॉ० शैल बाला अग्रवाल ने सुनाया– घर में जब/पैदा हुई लड़की/सासू भड़की। विजय चतुर्वेदी ने कहा– नीड़ बनाती/चिड़िया का सपना/नया सृजन। रीता शर्मा ने सुनाया– तुम आ गये/ युगों की प्रतीक्षा का /जीता भरोसा। शशि तनेजा ने दार्शनिक संस्पर्श के हाइकु प्रस्तुत किये–

माया–ममता/छूट गयी जब से/हो गये द्रष्टा। नागरी प्रचारिणी सभा की सभापति सरोज गौरिहार ने सुनाया–

सुख–सपने/सबके साझे कर/खुशियाँ पाऊँ। रमा रश्मि ने कहा–कहकहाँ में / धूल जाते हैं मैल/बुझे मन के। समारोह की मुख्य अतिथि डॉ० मिथिलेश दीक्षित ने भारतीय दर्शन, संस्कृति, अध्यात्म, प्रकृति आदि विविध विषयों पर प्रकाश डालते हुए हाइकु प्रस्तुत किये, आगरा महानगर में प्रथम बार हाइकु साहित्य की हाइकु विधा पर सम्मेलन होने के कारण उन्होंने हाइकु के विषय में, हाइकु के विविध प्रयोगों के विषय में उदाहरण प्रस्तुत करते हुए प्रकृति की विविध भंगिमाओं पर अपने अनेक हाइकु प्रस्तुत किये। छोटे–से छन्द हाइकु में गीत, नवगीत, मुक्तक, रूबाई, ग़ज़ल इसके साथ ही ताँका, चोका, सेदोका के उदाहरण देते हुए उन्होंने इन विधाओं में अपनी अनेक रचनाएँ प्रस्तुत कीं। उन्होंने बताया कि अब प्रकृति के अतिरिक्त भी हाइकुकार समाज में व्याप्त विसंगतियों, आडम्बरों, नैतिक अवमूल्यन, शोषण, असमानता, नारी–अस्मिता आदि से सम्बन्धित विषयों पर हाइकु लिख रहें हैं।

डॉ० मिथिलेश दीक्षित ने गुरू–वन्दना प्रस्तुत की–हर तपन/जहाँ शीतल होती/पावन होती/मधुमय जगती। अपने प्रसिद्ध हाइकुगीत–युगों के बाद/जाने क्यों लगी। आने तुम्हारी याद, तथा खोया है गाँव/मेरा खोया है गाँव आदि प्रस्तुत करते हुए अपने प्रसिद्ध मुक्तक–'चलायें हम/इसी मझधार में /टूटा सफीना तथा 'धन' के नाते/बदल गये रिश्ते/अब राखी के। नहीं ठिकाने/बदले मौसम में/बनपाखी के'–प्रस्तुत किये।

उनकी एक लयात्मक चोका रचना सुनकर सभागार में उपस्थित लोग भी अत्यन्त द्रवित हो उठे–वह न बोली/आँसुओं ने बात की/वे नेत्र बोले/अधर की चीत्कार/धुँधली दृष्टि/जर्जर देह बोली/वह न बोली...

उनकी सभी रचनाओं को गम्भीरतापूर्वक सुना और सराहा गया। दो घण्टों से भी अधिक उनके वाचन से प्रभावित होकर अनेक रचनाकारों ने उस समय भी हाइकु लिख लिये और उनको प्रेषित किये। न्यूज चैनल तथा पत्रकारिता से जुड़े लोगों ने भी उत्सुकता पूर्वक समारोह में भाग लिया, उसे कवरेज किया तथा प्रसारित किया।

सहभागी रचनाकारों में डॉ० कुसुम चतुर्वेदी, राजकुमारी शर्मा, रमा वर्मा, डॉ० रेखा कक्कड़, डॉ० पारूल अग्रवाल, श्रुति सिन्हा, विनय चतुर्वेदी, शोभा शर्मा, ममता वशिष्ठ, मीना अग्रवाल, शैलजा अग्रवाल, अल्पना, कविता डॉ० नीता यादव, कन्हैया लाल अग्रवाल, मीना गुप्ता, पवित्रा अग्रवाल, ममता, सुनीता, सुधा गर्ग, मंजरी अग्रवाल आदि ने भी हाइकु प्रस्तुत किये एवं सहभागिता की।

अन्त में अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में डॉ० मिथिलेश दीक्षित ने इस भव्य समारोह की सराहना की। उन्होंने बड़ी संख्या में उपस्थित साहित्यकारों में हाइकु के प्रति उत्सुकता जागरूकता को देखते हुए विशेष आग्रह के साथ कहा कि हाइकु एवं हाइकु से सम्बन्धित कविताओं में संक्षिप्तता, लाक्षणिकता और गहराई के साथ–साथ सहजता–सरलता तथा सम्प्रेषणीयता भी होनी चाहिए। हाइकु एक सहज सम्प्रेषणीय और सरल लघुकविता है और उसका उत्स जीवन के गहन संवेदन से है, जीवन के शाश्वत स्पन्दन से है।

आगरा महानगर लेखिका मंच तथा आथर्स गिल्ड ऑफ इण्डिया से सम्बन्धित और समारोह की संचालिका डॉ० सुषमा सिंह ने धन्यवाद ज्ञापित किया तथा डॉ० मिथिलेश दीक्षित और अन्य अतिथियों को साहित्यकारों की ओर से ग्रन्थ भेंट किये गये। संस्था की अध्यक्ष रमा सिंह तथा संस्थापिका डॉ० शैलबाला अग्रवाल ने भी अपनी ओर से उन्हें पुस्तकें भेंट की।

प्राप्त पुस्तकें

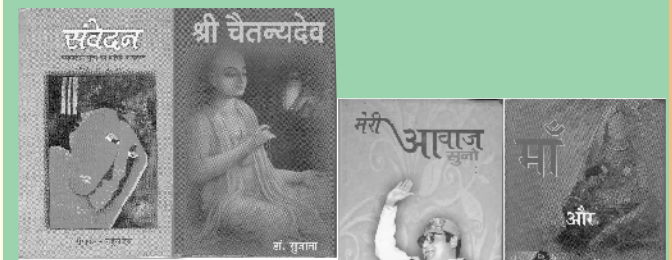

साहित्य सदन, सीतापुर, उ० प्र० 9454112975

दरियागंज, नई दिल्ली 9968277749

भागलपुर (बिहार) 9525932078

बेलगाम (कर्नाटक) 8867417505

आमंत्रण
स्थापना दिवस के अवसर पर

साहित्य, संगीत, राजनीति, सांस्कृतिक चेतना, लोकसंस्कृति आदि प्रत्येक क्षेत्र में भागलपुर ने अपनी एक अलग छाप छोड़ी है। जिसे सहेजने की कोशिश इस 'संभाव्य' के माध्यम से की जा रही है। यदि इसके पन्नें पलटेंगे तो पायेंगे यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की हिन्दी त्रैमासिक पत्रिका अनेक संभावनाओं को अपने में समाहित की हुई है। नवोदित साहित्यकारों का भी उत्साह और बौद्धिक वैभव में एक नई सारस्वत प्रेरणा का संचार करने वाली यह पत्रिका अब तीन वर्ष पूरा कर चुकी है।

पाठकों के हृदयांगण को झाकनें चौथा वर्ष में प्रवेश करने हेतु 'संभाव्य' का स्थापना दिवस–17 जनवरी 2016 के अवसर पर 'संभाव्य परिवार' आप सभी साहित्यिक रचनाकारों, पाठकों को आमंत्रित करता है।

स्थान : प्राशाल
मोक्षदा बालिका इन्टर विद्यालय
भागलपुर (लाजपत पार्क के निकट)
बिहार, भारत

निवेदक :–
'संभाव्य परिवार'

आलेख

स्त्री का अस्तित्व
कल और आज

डॉ० भावना शुक्ल
मोतीनगर, नई दिल्ली
मो०–9278720311

वैदिक कालीन में पवित्र ग्रंथों के अध्ययन ज्ञान शाखाओं में 'प्रवीणता' में स्त्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इसके साथ ही वैदिक ऋचाओं का साक्षात्कार अनेक ऋषिकाओं तथा ब्रह्मवादिनियों द्वारा किया गया।

आरंभिक काल में श्रुतियों की परंपरा में गार्गी मैत्रेयी एवं सुलभा के नाम प्रमुख है। ऋग्वेद की ऋचाओं में लगभग 414 ऋषियों के नाम मिलते हैं जिनमें से 30 नाम महिला ऋषिकाओं के है। यही नहीं नारियाँ युद्ध कला में पारंगत होकर राजपाट संभालने का कार्य भी कुशलता से करती थी। इसके बाद मध्यकाल में नारी दुर्दशा को प्राप्त रही।

स्नेह की प्रतिमूर्त्ति तथा शक्ति में चामुण्डा रूपी स्त्री को देश निर्माण की आधारशिला माना जाता है। नारी स्थान इस धरा पर सदा ही सम्मानीय रहा है। धर्म इस काल का उद्घोष करता है– 'यत्र–नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' वास्तव में यही सच है जहाँ–नारी का सम्मान होता है वहाँ देवता निवास करते हैं।

देखा जाए तो आज हर क्षेत्र में नारी वैदिक कालीन नारी के समकक्ष पुनः आ खड़ी हुई है। नारी पूरे आत्मविश्वास के साथ अपनी अस्मिता की पहचान बनाने के लिये निरंतर संघर्षरत है। सदियों से उत्पीड़ित एवं दलित नारी स्वयं के लिए मानवीय दृष्टिकोण की जमीन तलाशती समाज को मानवीय बनाने की कोशिश में जुटी हुई है।

संघर्ष की निरंतर यात्रा में स्त्री मन, लगाव तथा अलगाव के दंश को सहती हुई भविष्य के सुनहरे सपने देख रही है। देखा जाये तो नारी सृष्टि की सृजनकर्त्ता है। सृष्टि का रूप रंग, साज, श्रृंगार सब कुछ नारी से ही है। आज तक नारी को माँ, बहन, बेटी, पत्नी के रूप में दर्जा दिया जाता है तथा इसी के आधार पर साहित्य में इसका गुणगान किया जाता है। आज वर्तमान में बदलते परिवेश एवं शिक्षा की बयार ने स्त्री की परिभाषा को ही बदल दिया है। आज की शिक्षित नारी समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन की जनक है।

वैसे स्त्री और पुरूष में कोई भी अंतर नहीं है। दोनों का मन हृदय एक सा ही है दोनों में आत्मा, शक्ति और सामर्थ्य के स्वर में भी कोई विशेष फ़र्क नहीं है, फिर भी हमारा समाज पुरूष प्रधान है। तथा स्त्री की दशा दोयम एवं हेय है।

शेक्सपीयर ने कहा –
'दुर्बलता तुम्हारा नाम ही नारी है
प्रसाद जी की दृष्टि में नारी –
'नारी तुम केवल श्रद्धा हो'
मैथिलीशरण गुप्त जी के अनुसार –
'अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी
आँचल में है दूध और आँखों में पानी'

कवि ने इन पंक्तियों के आधार पर नारी की निरीह स्थिति की ओर संकेत किया है। लेकिन आज बदलते परिवेश में यही अबला आज अब्बल लोगों को सबलता प्रदान कर रही है। यह हिम्मत, यह शक्ति स्त्रियों में शिक्षा, ज्ञान आदि ने भरा है इनके स्वरूप और गुण दोनों का रूप परिवर्तन शिक्षा के कारण ही संभव हुआ है। नारी की कोमल भावनाओं के कारण उसकी तुलना लता से की गई है। क्योंकि यह नारी गुण एवं स्वभाव से मिलती–जुलती है। लता का विकास बिना पेड़ के नहीं हो सकता उसी प्रकार नारी के विकास के लिए यानी स्त्री के जीवन–निर्वाह के लिए एक पुरूष रूपी वृक्ष की आवश्यकता होती है। जिसकी छत्रछाया में उसका जीवन यापन होता है। यानी आज यह भ्रम टूट चुका है कि आज की नारी पुरूष नामक फ्रेम में कैद है। बल्कि हर क्षेत्र में कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है।

''प्यार ही नहीं जिन्दगी देती है औरते
पर जिन्दगी में सब कुछ सहती है औरते
अब इन्हें कमजोर न समझाना तुम
हर मुकाबले में खड़ी होती है औरते।''

पहले की तरह आज नारी केवल गृहस्वामिनी हीं नहीं रह गई है, वरन् नारी के दायित्व क्षेत्र का विस्तार हुआ है। परिणाम स्वरूप स्वातंत्र्योत्तर परिवेश में नारी की आत्म–निर्भरता, अस्मिता के लिए संघर्ष और अधिकारों के प्रति छटपटाहट ने प्राचीन नैतिक मूल्यों को झकझोर कर रख दिया है।

साहित्यिक विधाओं में जैसे कविता, कहानी, उपन्यास में नारी संघर्ष का जीवंत चित्रण देखने को मिलता है। महिला लेखिकाओं का साहित्य तो संवेदना के स्वर में पुरूष लेखकों से भिन्न है। क्योंकि ये लेखिकाएँ अपने अर्न्तमन की पीड़ा को तथा उनकी समस्याओं से अच्छी तरह परिचित है। महादेवी वर्मा के अनुसार– 'पुरूष के नारीत्व अनुमान है। परंतु नारी के लिए अनुभव। यही कारण है कि महिला कथाकारों ने नारी की समस्याओं उनके अंतर्मन और पीड़ा का यथार्थ अंकन किया है।

कथा लेखिका मैत्रेयी पुष्पा का मानना है कि स्त्री और पुरूष आज भी इस पितृ–सत्तात्मक समाज में जैविक, आर्थिक और सामाजिक धरातल पर भिन्न है। पुरूष को जो सुविधाएँ उपलब्ध है, वह इस समाज में स्त्री को सुलभ नहीं है। स्त्री आज भी दलित है, शोषित है, पीड़ित है।

वर्तमान समाज में नैतिकता के मापदंड बेहद लचर हो गये है। नारी में भी नैतिकता का भारतीय परंपरागत भाव तिरोहित हो रहा है। समय और स्थान के अनुरूप मान्यताओं में शीर्षासन होता रहा है लेकिन प्रदर्शन/विज्ञापन की होड़ में वर्तमान नारी स्वयं चीरहरण में लगी है। सात्विक रूचि और कलात्मक उदारीकरण बयान में बहा है। संबंधों के बीच से प्रेम और स्नेह गायब हो रहा है। नारी भी आत्मकेंद्रित हो रही है। भजन की स्वर लहरी पॉप–संगीत/रिमिक्स में बदल रही है और इसी के अनुरूप बदल रहा है आधुनिक नारी का मूल भाव।

हमारे समाज पर इन सबका प्रभाव गलत पड़ रहा है नारी

को भोग्या समझा जाता है नारी तो सिर्फ बातों में ही पूज्या है।''आज अखबार पर जब पड़ी है नजर सुना रही है बलात्कार की खबर''स्त्री की ऐसी दशा देखकर आज नारी स्वयं अपना लोहा लेने को तैयार है वह भी यह सिद्ध करना चाहती है कि वह रानी दुर्गावती, रानी लक्ष्मीबाई के समान है।वह अस्मिता और अस्तित्व की पहचान बनाने के लिये तत्पर है।

हम यह कह सकते है कि नई सदी में नारी की एक नई छवि उभर रही है।बेड़ियों से जकड़ी नारी ने आज अपनी नई पहचान बना रही है।

स्त्री की बौद्धिक योग्यता, भावनात्मक क्षमताएँ, सकरात्मक जिज्ञासा, ज्वलंत सोच का भविष्य उज्जवल दिखाई दे रहा है।स्त्री को कल की किरण साफ दिखाई दे रही है।

स्त्री कल और आज से गुजरती हुई कल तक का सफर उसने जिन कुरीतियों, आडंम्बरों, संवेदनाओं, अनुभूतियों का अभिनय करती हुई कल की मोहकता के साथ सफलता के ऊँचे आसमान को अवश्य छू सकेगी ।

लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती सर्व रूप धरे समान
नारी की है अस्मिता है उसकी पहचान

संदर्भ–

1 .नारी विषयक अवधारणा–वैदिक काल से आज तक
2 .स्त्री अस्मिता का संघर्ष– छतीसगढ़ विवेक
3 .स्त्री विमर्श और हिन्दी लेखन–धर्मा यादव
4 .नई सहस्त्राब्दी में नारी की भूमिका–बेव दुनिया

कविताएँ

हिमांशु 'मोहन'
निगोही, शाहजहाँपुर (उ० प्र०)

धूप के साये

अपने दिल में आजमाइश लिए बैठा हूँ
आँखों में नूर की ख्वाहिश लिए बैठा हूँ
अमावश को मिलता नहीं चाँद का तसव्वुर
सूरज की धूप के साये लिए बैठा हूँ।

प्रीत अभी भी जिंदा है...

उन हसीन शामों को तब
न जरूरत थी महफिल की
भूले बिसरे उन गीतों का
संगीत अभी भी जिंदा है
तुम नहीं हो खबर है मुझको
तुम्हारी प्रीत अभी भी जिंदा है

शाम की इत्र...

हर शाम की इत्र
मेरे मन की उलझनें
ज़रा सुलझा जाती है

पर मन थोड़ा बहका सा है
हर आँच पे जरा रुठा सा है
तिस पर तुम्हारी व्यँजना

कुछ कहो कि चुप न रहो
चुप हो जाना इक़ अलग दर्द है
और उस पर ये शाम
तिस पर उसकी इत्र...

बस इतना सा... !!!

मैं कुछ ज्यादा नहीं चाहता
सिर्फ इतना कि
धूप ठंडी हो जाऐं
पर्वत नरम हो जाऐं
धरती से बरसात होने लगे
''ओ'' दिन अब रात हो जाऐं
आसमान हरा हो जाऐं
धरती नीली सी
रंग सफेद हो जाऐं
'ओ' हवा रंगीली सी
शायद तब तुम समझ सको
कि प्रेम तो तुम हमसे करते हो
पर नजदीकियाँ
किसी और से हैं।

खुद पर लिखूँ?

आज सोंच रहा हूँ
कविता लिखूँ खुद पर
ऐसी जिसे पढ़कर
हँसी आये या फिर
ऐसी जो खुद को रुलाये
अच्छा!
तो फिर कैसी
प्रेम वाली या फिर
जीवन संग्राम
कहीं कुछ तो है जो
हृदय हूक उठता और
कहता कविता लिखो
ऐसी जो खुद को रुलाये
आपको हँसाये
आपको हँसाने के लिये
कई बातें हैं
आपको रुलाने के लिए
सिर्फ यही
कि मैं खुद पर हँसू
और एक कविता लिखूँ।

तितली से मिला मैं...

एक तितली से मिला मैं
उड़ती हुयी दूर चमन मे
बड़ी नटखट शैतान है वो
पर सच है मेरी मुस्कान है वो
रंगों का कारवाँ उसका है
ये नीला आसमाँ उसका है
हवा से बातें वो करती है
चाहे कैसा भी पुष्प हो
हर पुष्प पे वो रुकती है
खुशी देती है हँसी देती है
जीवन को वो नमी देती है
एक तितली से मिला मैं
जीवन के रेंगों में एक
रंग मेरा उसके नाम है
उड़ना आहिस्ता ही अभी
ये जिंदगी तमाम है
न चुप रहो चुपचाप को
सहो तुम गहरे ताप को
जीवन तुम हाथों में लेलो
ये छोटी उड़ाने इसे दे दो
पर बड़ी खुद्दार है वो
एक तितली से मिला मैं
जो उड़ती है दूर चमन में...

संस्मरण

दुनिया मेरे आगे के लिए

रविकान्त
सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
मो०–9451945847

दुर्विजयगंज, पुराना लखनऊ। गंज–दर–गंज। इतना गझिन इलाका की एक गंज से कब दूसरे गंज में पहुँच जाएं, पता नहीं नहीं चलता। तमाम तंग गलियों से पता पूछते हुए यहाँ पहुँचा। वयोवृद्ध साहित्यकार मुद्राराक्षस का घर। साढ़े ग्यारह बज रहे हैं। 'दिवस का तमतमाता रूप... रूई–ज्यों जलती हुई भू।'' गेट खोलकर अंदर दाखिल हुआ। छोटा–सा घर। आमने–सामने दो कमरे दिख रहे हैं। कमरे की छत से एक बेल झूल रही है– अनफूली। फर्श पर धूल जमी हुई है। यहाँ–वहाँ पानी बिखरा हुआ है। दीवारों के कोने पर घास मुस्कुरा रही है। प्रशांत ने कहा, हम शायद घर के पिछवाड़े आ गए हैं। होनहार और कर्मठ प्रशांत कुमार वर्मा पहले पत्रकारिता में थे, आज–कल लखनऊ विश्वविद्यालय से हिंदी में एम०फिल० कर रहे हैं– 'विजयदान देथा' की कहानियों पर। किंकर्त्तव्यविमूढ़ हम लोग इधर–उधर नजरें घुमा रहे थे। तभी, अंदर से कुत्ते के भौंकने की आवाज आई। मैंने कमरे के दरवाजे पर दस्तक दी। अंदर कुछ चहल–कदमी महसूस हुई।

थोड़ी देर बाद दरवाजा खुला। पाँच फिट की नितांत दुबली काया सामने नमूदार हुई। सिर पर जहाँ–तहाँ बेतरतीब सफेद बाल। चीनियों की तरह ठोढ़ी पर कूचीनुमा भूरे रंग की दाढ़ी। सीधी गरदन पर स्थिर मुख। छोटी–छोटी आँखें। आँखों से झांकता हुआ प्रश्न–कौन? मैंने अपना परिचय दिया। बीती शाम को फोन पर हुई बात का हवाला दिया। चेहरे पर एक मृदु मुस्कान...। तब मुद्रा जी आगे बढ़े। सामने वाले कमरे की ओर। छोटी–छोटी डगों से गज भर के फासले को नापते हुए, उन्होंने हौले से दरवाजा खोला। नन्हें–नन्हें पॉवों से कठपुतली नुमा चलते हुए उन्होंने पूरे एहतराम के साथ अंदर आने का इशारा किया।

करीब आठ बाइ आठ का कमरा। सीलन और बदबू से आबाद। सोफे और दीवान पर भी धूल जमी थी। शायद कई दिनों के बाद कमरा खोला गया। साजो–सामान के नाम पर कुछ नहीं। कमरे में अजीब किस्म की खामोशी। छत में लगा हुआ पंखा धीरे–धीरे उस खामोशी को चीरने का प्रयास कर रहा है।... मुद्रा जी एक सोफे पर बैठ गए हैं। बदन पर झीना लखनवी कुर्ता है। बटन खुली हुई है। मलिन सीने के दो चार भूरे बाल झांक रहे हैं। सामने वाले सोफे पर प्रशांत बैठ गए और मैं मुद्रा जी के बगल में दीवान पर। ताकि रिकार्डिंग में आसानी हो सके। बैठते ही मैंने कमरे में चारों ओर नजर घुमायी। निराला जी का इलाहाबाद वाला कमरा याद आ गया। 'साहित्य साधना' में राम विलास शर्मा ने लिखा है कि निराला दस बाई दस के बेहद गंदे और बदबूदार कमरे में रहते थे। निराला अपना कमरा किसी को साफ भी न करने देते थे। यही वो कमरा था जिसमें निराला ने अपनी कालजयी तीनों लंबी कविताएं लिखी थीं। क्षण भर के लिए मैं भूल गया कि हमारे सामने मुद्राराक्षस जी हैं। बड़े रचनाकारों की यह फ़ितरत है या फिर त्रासदी? कुछ कह नहीं सकता।

हस्बेदस्तूर, मैंने उनसे इण्टरव्यू शुरू करने की इजाजत मांगी। हल्की मुस्कान के साथ उनकी आंखों ने हामी भरी। आज इक्कीस जून को जन्मदिन है। तिरासीवां जन्म दिन। मैंने शुभकामनाएं देते हुए उनसे पहला प्रश्न पूछा। 'आज के दौर में सत्ता निरंकुश और बर्बर हो चुकी है। इस समस्या और चुनौती का सामना करने के लिए क्या साहित्य और साहित्यकार की भूमिका को आप पुनर्परिभाषित करना चाहेंगे? उन्होंने बेहद संक्षिप्त और मामूली जवाब दिया...' वही चुनौतियाँ हैं, जो पहले थीं।' फिर चुप्पी। बात को आगे बढ़ाने के लिए मैंने सवाल दोहराया। साहित्य को पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता पर मैंने जोर डाला। पुनः उतना ही सूक्ष्म जवाब। 'नहीं, पुनर्परिभाषित करने की जरूरत नहीं।' मुझे निराशा हुई। अलबत्ता, मैंने दूसरा सवाल किया। कुछ हल्के में। लखनऊ की लेखकत्रयी (यशपाल, भगवतीचरण वर्मा और अमृतलाल नागर) और आज के लेखकों के बारे में आपकी क्या राय है? उम्र के इस पड़ाव पर कितना आश्वस्त हैं आप? जवाब फिर से निराशा करने वाला मिला। 'कोई खास राय नहीं।' तब मैंने दो–चार लेखकों के नाम लेकर उन्हें छेड़ना चाहा। फिर भी उन्होंने कोई गंभीर जवाब नहीं दिया। मेरे द्वारा लिए गए एक नाम पर उन्होंने लगभग सहमति दी। 'हाँ... वीरेन्द्र यादव थे।' अब मेरा माथा ठनका। मैं संभलकर बैठा। अब मैंने दिल्ली के 'दबंग' रचनाकारों के बारे में मुद्रा जी से सवाल किया। वे कोई नाम याद नहीं कर पा रहे थे। मैं जिसके बारे में कहता, वे वही नाम दोहरा देते।... ओह क्या मुद्रा जी की स्मरण शक्ति क्षीण को गयी है! अब मैं विवादों पर उतर आया। 'मुद्रा जी आप किसी सभा–संगोष्ठी में बोलते हैं, तो विवाद शुरू हो जाता है। क्या आप जान–बूझकर ऐसा करते हैं या नामवर सिंह की तरह सुर्खियों में बने रहने की कला आपको भी आती है? यही कारण है कि कुछ लोग आपको लखनऊ का नामवर सिंह कहते हैं। अगर आप विवाद खड़ा नहीं करते हैं तो क्या इसे सच कहने के साहस के रूप में देखा जाए।' मुद्रा जी हौले से मुस्कुराए। चेहरे पर चमक आ गयी। बोले– 'यह मेरे लिए फक्र की बात है कि लोग मुझे लखनऊ का नामवर सिंह कहते हैं।' फिर खामोशी...। अब मेरा धैर्य जवाब देने लगा। मुझे लगा कि मुद्रा जी की याद्–दाश्त जाती रही। अब वे भी जीवन के आखिरी सच से बावस्ता हैं। लेकिन उनकी शारीरिक भाषा से तो ऐसा नहीं लगता था। तब कोई और बात है?... पता नहीं।

लौटने पर कौशल किशोर जी और सुभाष राय जी से फोन पर बात हुई। मैंने उन्हें मुद्रा जी की हालत से रूबरू कराया। दोनों लोग बहुत चिंतित हुए। कौशल जी ने कहा कि तब हम लोग सोलह जून को उनसे मिलने जाएंगे। सुभाष राय जी ने एक दिलचस्प जानकारी दी। बोले– 'मुद्रा जी का जब मन नहीं होता तो वे ऐसे ही एकाध पंक्ति में जवाब देते हैं।' ... तो सच क्या है? व्यंग्य और विवाद के लिए मशहूर मुद्रा जी क्या मुझसे विनोद कर रहे थे?

कहानी

संयोग या नियति का खेल

डॉ० आनन्द प्रकाश
सिकागो, अमेरिका
मो०–847–634–3906

क्रमशः

रवि को अपनी इंन्जिनीयरिंग कंपनी में कार्य करते हुए लगभग पंद्रह वर्ष हो चुके थे। उसके कार्य से सभी राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय ग्राहक (क्लायंट्स) पूर्णतया संतुष्ट रहते थे और उसको उचित वेतन–वृद्धि तथा बोनस मिल रहे थे। हेमा का अध्यापिका का व्यवसाय भी संतोषजनक था। उनके अपत्य अब तेरह–और ग्यारह–वर्षीय हो चुके थे। शनैः 2, दैनिक व्यय में वृद्धि तथा जीवन–स्तर में उन्नयन आ चुका था।

इस वर्ष उसकी संस्था साझेदारी (पार्टनरशिप) से हटकर सार्वजनिक (पब्लिक) बन गयी थी। अतः वरिष्ठ प्रबंधन में परिवर्तन हो गया था और डग ऐबट नामक एक नया व्यक्ति कंपनी का महाप्रबंधक नियुक्त किया गया था। इसी बीच, संस्था के बारह में से तीन विदेशी कार्यालय वित्तीय घुटालों, भ्रष्टाचार तथा अवैध कार्यप्रणाली के आरोपों में फँस गये थे। इस से अंतर्राष्ट्रीय विभाग को महत्वपूर्ण हानि हो गयी थी। रवि के कार्य–क्षेत्र का लगभग पचास प्रतिशत कार्यभार विदेशी स्रोतों तथा परियोजनाओं पर निर्भर था। फलस्वरूप, उसका जलस्रोत–अनुभाग संस्था के लिए कुछ कम लाभकारी हो गया था। अतः केवल उन तीन देशों में स्थित कार्यालयों में असन्तोषजनक निष्पादन के कारण, श्री ऐबट ने सम्पूर्ण अंतर्राष्ट्रीय विभाग को बंद करने की घोषणा कर दी। इस विषय पर काफी तर्क–वितर्क हुआ कि केवल तीन कार्यालयों के कारण दर्जनों देशों में व्यवसाय समाप्त करने में कोई आर्थिक विवेकता नहीं है। किन्तु, अपने निर्णय पर अडिग, श्री ऐबट झल्ला उठे और समूचे विदेशी कार्यकर्ताओं पर निंदनीय टिप्पणी कर बैठे, ''मुझे इन अन्य भाषा–भाषियों,अन्य वर्णीय, विदेशी कर्मचारियों पर तनिक भी विश्वास नहीं है। मैं इनके झमेले में नहीं पड़ना चाहता। मुझे अपने अमेरिकी कर्मचारियों पर पूर्ण विश्वास है, उन्हीं की चिंता है, और उन्हीं से सरोकार है।'' इस प्रकार, रवि व्यवसाय हीन हो गया और उसकी पंद्रह वर्ष की सेवा की एक छोटे से, अकृतज्ञ से, पत्र द्वारा समाप्ति हो गयी, ''आपके कार्यकाल में आपकी सेवाएँ अत्यंत उपयोगी रही; किन्तु, व्यवसाय की कमी के कारण तीस अप्रैल के पश्चात् आपकी सेवाओं की आवश्यकता नहीं होगी। धन्यवाद।''

कचाचित, श्री ऐबट की दृष्टि में अमेरिका–जन्मित, श्वेतवर्ण, अमेरिकी उच्चारण वाले व्यक्तियों को ही उसके विभागों में कार्य करने का जन्म–सिद्ध अधिकार था। आप्रवासी और यहाँ तक कि अन्य वर्ण के देशीयकृत नागरिक भी उसके लिए विदेशियों की श्रेणी में थे। यद्यपि जाति, रंग, राष्ट्रीयता, लिंग, धर्म और उच्चारण सम्बंधी भेदभाव के विरूद्ध नियम बने हुए हैं, किन्तु किसी प्रबंधक या नियोक्ता के लिए पर्याप्त छूट उपलब्ध है कि वह अवैधता की धारणा पर छलावरण डालकर, निरंकुश रूप से, अप्रत्यक्ष भेदभाव पूर्ण आचरण कर सके। फिर, नियम–अवहेलना के लिए और व्यवसाय–हरण को भेद–जनित सिद्ध करने के लिए, सरल अल्प–व्ययी साधन भी तो ऐसे प्रत्येक आहत कर्मचारी को उपलब्ध नहीं होते, जिससे वह उचित नियमों का लाभ उठा सके। रवि ने विभिन्न व्यावसायिक पत्रिकाओं में अपनी योग्यता सम्बंधित विज्ञापनों की खोज की और बीस से भी अधिक संस्थाओं में अभियांत्रिक व्यवसाय के लिए आवेदन पत्र भेजे। बीस से अधिक वर्षों की भारत और अमेरिका में अभियांत्रिक शिक्षा तथा अनुभव के पश्चात् उसको केवल तीन निर्देश या सन्दर्भ–पत्र उपलब्ध हो सके थे; एक जापानी प्राध्यापक से, एक फिलिपिनो वरिष्ठ अभियंता से जो उसके व्यवसाय सम्बंधी ग्राहक–संस्था में कार्यरत था और एक चीनी मित्र से जो एक निर्माण संस्था में प्रबंधक अभियंता था। किसी भी श्वेतवर्ण अमेरिकी से उपयुक्त प्रशस्ति–पत्र नहीं मिल सका था। यह कहना कठिन है कि यह अप्रत्यक्ष और अनपेक्षित भेदभाव था, अंतर्निहित ईर्ष्या थी अथवा एक संयोग मात्र था कि उसे, उस समय, प्रशस्ति–पत्र देने योग्य कोई परिचित श्वेतवर्ण अभियंता नहीं मिल पाया था। जो भी हो, उसे घोर निराशा हुई। इतना ही नहीं, उसे साक्षात्कार हेतु एक भी पत्र नहीं मिला। हर आवेदन पत्र का एक निराशाजनक, विनम्र उत्तर आता था, ''धन्यवाद, आपकी शिक्षा तथा अनुभव उत्तम है, इस समय इस विभाग में आपके योग्य कोई रिक्ति नहीं है। हम आपके व्यवसाय–वृतांत को अपनी फाईल में रख रहे हैं।''

सामान्यतः आप्रवासी तथा देशीय–कृत अमेरिकी नागरिकों में यह धारणा थी कि आपके आवेदन पत्र में लिखित योग्यताओं का कम, और नाम तथा उपनाम का अधिक मूल्य होता है, जब तक कि आपका कोई परिचित व्यक्ति ही चयन समिति में न हो। बहुत से आवेदक तो अपने नाम का पाश्चात्यीकरण भी कर लेते थे, जैसे– राजीव से रोजर, नरेश से निक और कृष्ण से क्रिस इत्यादि। परन्तु तात्कालिक अंतर तो उपनाम से पड़ता था। यह कहना कठिन है कि उचित नौकरी पाने में कठिनाई का कारण केवल अमेरिका–निहित अपारदर्शित भेदभाव था या यह एक संयोग मात्र था कि उस समय उसके कार्यक्षेत्र में समग्र तौर पर मंद गतिविधि थी। ऐसा अवश्य लगता था कि इस प्रकार की व्यवसाय–सम्बन्धी अनिश्चितता के भय से, अधिकांश देशीयकृत नागरिक, कम वेतन–प्रदायक किन्तु अपेक्षाकृत स्थायी और सुरक्षित, व्यवसाय खोजने का ही प्रयत्न करते थे। व्यवसाय–हीनता की आशंका, भय, और लज्जा से प्रायः सभी विदेशी पीड़ित रहते थे। यह सत्य है कि नौकरी के अत्यधिक स्थायी तथा सुरक्षित होने से अक्षमता आ सकती है, उत्पादकता में कमी आ सकती है और एक सुस्त तथा निठल्ले कर्मचारी वर्ग का सृजन हो सकता है। किन्तु, छंटनी और व्यवसाय–हानि की दिन प्रतिदिन की आशंका और भय भी तो एक हतोत्साहित, भयकारी, निष्ठाहीन तथा निराशा–सिंचित वातावरण उत्पन्न करते हैं। इन दोनों के बीच संतुलन की आवश्यकता है। समुचित प्रतिबन्ध–विहीन एवं अनियंत्रित अवस्था में तो कोई भी प्रणाली, एक समय के पश्चात्, भ्रष्ट तथा विकृत हो सकती है; फिर चाहे साम्यवाद हो, समाजवाद हो, या पूंजीवाद। जो थोड़े अधिक प्रतिभाशाली, चतुर तथा व्यवहार–कुशल हैं, वे नेता, सी०ई०ओ० और धनाढ्य बन जाते हैं। धीरे–धीरे, धनी और अधिक धनी तथा निर्धन और अधिक निर्धन होते जाते हैं। अंततः व्यवसाय इतनी असंतुलित हो जाती है कि कर्मचारी वर्ग में असंतोष फैलने लगता है। अपने जीवन में पहली बार, रवि को पूंजीवादी व्यवस्था के इस पहलू और कटु सत्य का आभास हुआ कि लोकतंत्र की आड़ में, अधिकतर नियम तथा विधान निजी व्यवसाय तथा उद्यम को ही प्रोत्साहित करते हैं; सामान्य कर्मचारी या श्रमजीवी तो उपेक्षित सा ही रह जाता है, जब तक कि वह किसी यूनियन अथवा अन्य उसी प्रकार की सुरक्षाप्रदायिनी संस्था का सदस्य न हो।

उसके भारतीय तथा अन्य प्रवासी मित्र प्रायः इस विषय पर वाद–विवाद किया करते थे कि अमेरिका में भेदभाव, भाई–भतीजावाद तथा अन्य प्रकार का पक्षपात नाना प्रकार के आवरणों में निहित होता है और कर्मचारी के चयन में, पदोन्नति–चयन में, बोनस–वितरण में तथा अन्य कई भिन्न रूपों में प्रकट होता है। समान योग्यता तथा अनुभव पर समान वेतन की परिपाटी का उल्लंघन तो अधिकांश आप्रवासी तथा देशीय–कृत, सुशिक्षित भारतीय नागरिकों से सुना जाता था। प्रत्यक्ष रूप में तो यही जाना जाता है कि अमेरिका तो सुयोग्य तथा श्रमिक आप्रवासियों द्वारा निर्मित राष्ट्र है और इसका विशेष गौरव यही है कि यहाँ हर वर्ण, राष्ट्र, धर्म या लिंग के व्यक्ति को समान व्यक्तिगत अधिकार उपलब्ध हैं और प्रत्यक्ष रूप में, कार्यालयों तथा अन्य कार्यक्षेत्रों में कोई भेदभाव नहीं दिखाई देता। किन्तु, अप्रत्यक्ष रूप में कई प्रकार के भेदभाव अनुभव में आते हैं।

अब रवि को व्यवसाय खोजते हुए छः मास हो चुके थे। बालकों के पालन पोषण, शिक्षा, गृह–बंधक–किस्त, तथा घरेलू व्ययभार वहन करने कि लिए हेमा के वेतन से काम चल रहा था, किन्तु धीरे–2 उनकी वित्तीय स्थिति सोचनीय होती जा रही थी। कैसी विडम्बना थी कि वह स्नातकोत्तरी डिग्री तथा डेढ़ दशक से अधिक देशीय और अंतर्राष्ट्रीय कार्यानुभव के साथ विभिन्न संस्थाओं के

द्वार खटखटा रहा था और कोई उचित व्यवसाय नहीं मिल रहा था।

इसी बीच उसको सूचना मिली की भारत में उसके पिताश्री प्रोस्टेट कैंसर–ग्रस्त हो गए हैं। कहते हैं, कष्ट, दुर्घटनाएं और दुर्भाग्य अकेले नहीं आते। उसने तत्काल ही एक चेक डाक द्वारा भेजने का प्रबंध किया। किन्तु अब उसका स्वयं भारत जाना अनिवार्य हो गया था और बैंक में सारे व्ययभार के लिये पर्याप्त पैसा नहीं था। हेमा ने अपने चाचा जी को कीनिया से कुछ धनराशि भेजने के लिये लिखा। किन्तु, इतने थोड़े समय में यह संभव नहीं हो सका। अतः उसने अपने पेंशन–फण्ड से उधार लिया और रवि की भारत यात्रा का प्रबंध किया।

''हेमा, मैं बहुत लज्जित हूँ और मुझे खेद है कि मेरे कारण तुम भी मेरी आर्थिक कठिनाइयों की भागीदार बन गयी। कदाचित, तुम्हें मुझ से विवाह ही नहीं करना चाहिए था। तुम तो मेरी स्थिति से भलीभांति परिचित थी।'' कैसी बातें करते हो, रवि? मैं तुम्हारी संवेदनशीलता, सरलता, विचारशैली तथा पारिवारिक स्थिति से भलीभांति परिचित थी, तभी तो पंद्रह वर्ष तक सूने–2 अंधकारमय जगत में तुम्हें खोजती रही। घोर निराशा के तिमिराच्छादित गर्त में आशा का दीप जलाये झांकती रही कि किसी अद्‌भुत संयोग से या नियति के किसी अनोखे चमत्कार से तुम मिल जाओगे। ऐसा लगता है, रवि, कि हमारा संगम तो किसी दैविक द्वारा निर्धारित था। हमारा पुनर्मिलन मन का मन से मिलन है और आत्मा का आत्मा से एवं हृदय से हृदय का गठन है; इसमें आर्थिक लेनदेन का कोई मूल्य नहीं है।''

उधर भारत में उसके पिताश्री की दशा करुणाजनक थी; शारीरिक पीड़ा असह्य हो गयी थी। ऊपर से, रवि द्वारा प्रेषित डॉलर के चेक का रुपयों में भुगतान होने में बहुत विलम्ब होता था। एक चेक तो विकृत डाक व्यवस्था की कृपा से गुम ही हो गया था; एक बैंक द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया था, क्योंकि रवि ने अनजाने में अमेरिकी प्रथा से तिथि लिखने में पहले मास, फिर दिनांक, और अंत में वर्ष लिख दिया था (जैसे 6/21/1970)। सामान्य स्थिति में तो पेंशन से उनकी जीविका चल रही थी। किन्तु केंसर की चिकित्सा और औषधियों का व्ययभार उनकी अपनी आर्थिक क्षमता से बहुत अधिक था। परिचित व्यक्ति, और यहाँ तक कि सगे सम्बन्धी भी विभिन्न प्रकार के व्यंग और छींटे कसते थे, ''अमेरिका जाकर कहाँ किसी को वृद्ध मातापिता का ध्यान रहता है; प्रवासी बच्चे तो बस प्रवासी ही हो जाते हैं; ज्योंही दृष्टि से ओझल होता है परिवार, त्योंही उसका कर देते हैं मन से बहिष्कार।'' ऐसी दयनीय अवस्था में भी उसके माता पिता संतुलित तथा आश्वस्त थे कि रवि एवं हेमा ऐसे नहीं है; कुछ न कुछ करेंगे; कोई न कोई कारण अवश्य होगा इस देरी का।

अगस्त मास का प्रथम दिवस था, रवि अपने घर भारत पहुंचा। अपने माता पिता की असहाय अवस्था देख कर और उनके पिछले महीनों की कठिनाइयों की व्यंगात्मक गाथाएँ सुन कर उसे अत्यंत कष्ट हुआ, ''कहीं भारत छोड़ कर मुझसे से एक भारी अपरिवर्तनीय और असाध्य भूल तो नहीं हो गयी है? यहाँ मेरी स्थायी नौकरी थी; सामान्य से कुछ उच्चतर आर्थिक जीवनचर्या हो रही थी; कम से कम नौकरी खो देने की तो कोई चिंता नहीं थी और, अब मैं एक ओर तो अपने परिवार के उत्तरदायित्व में खरा नहीं उतर सका, ऊपर से एक व्यवसाय–हीन अभियंता बना हुआ हूँ। ऐसे संकट के समय अपने माता पिता से दूर जा बैठा हूँ।''

हताशा सा बैठकर अपने कई प्रवासी मित्रों की बातें स्मरण करने लगा। बाह्य रूप से तो अमेरिका आना एक स्वर्णिम स्वप्न की साकारिता है, किन्तु हम, जो अपने सगे–सम्बन्धियों से बिछुड़ कर यहाँ आते हैं, इस स्वर्णिम प्रवास का बहुत भारी संवेदना पूर्ण मूल्य चुकाते हैं। प्रथम पीढ़ी के प्रवासी वह जन्म–स्थान खो देते हैं, जहाँ उन्हें पूर्णतया निजित्व की मादक अनुभूति रहती थी और एक ऐसे स्वर्ग में आ गिरते है। जहाँ पग–पग पर अपनत्व की कमी का आभास होता है। एक सुंदर तथा विशाल, सुविधापूर्ण निवास–स्थान तो मिल ताजा है, परन्तु ज्योंही बाहर पैर रखते हैं, तो लगता है कि यह सड़क, पार्क, टेनिस कोर्ट, गोल्फ कोर्स, उद्यान, सरिता और सरोवर अपने हीं हैं; जो लोग मिलते हैं, वह अपनी भाषा नहीं बोलते, अपने संस्कारों को हास्यास्पद समझते हैं और भिन्न से रीति–रिवाज तथा खानपान को सेवन करते हैं। व्यवहार में निपट औपचारिकता की गंध आती है। हम सुनसान मार्ग पर एकाकी से भ्रमण करते हैं, जहाँ हमारा एकाकीपन कारों की धर्र–धर्र से टूटता है, न कि मातृभाषा में युवकों की उच्च–स्वरीय बातचीत और युवतियों की मधुर वाण से। अपने घर से बाहर खुलकर अट्टहास या अपनी मातृभाषा में मन की बात कहने में हिचकते हैं हम। स्वदेशी और स्वदेश–संबंधी संगीत सुनते रहते हैं; प्रायः, स्वदेशी मित्रों से ही मिलते जुलते हैं; जब भी अवसर मिलता है, अपनी मातृभाषा की फ़िल्में देखते हैं; और कई एक तो सेवा या व्यसवाय–निवृत्ति के पश्चात् स्वदेश में ही रहने तथा वहां की मिट्टी में ही अंतिम संस्कार के स्वप्न सजाकर अपने को सांत्वना देते रहते हैं।

किसी श्वेतवर्ण, जन्मजात अमेरिकी से किसी अमेरिकी प्रणाली पर आलोचनात्मक टिप्पणी कर बैठें प्रत्युत्तर सुनने को मिलता है, ''यदि यहाँ इतना कष्ट है या इतनी असुविधा है, तो स्वदेश वापस क्यों नहीं चले जाते?'' सुनकर कभी–कभी ऐसा प्रतीत होता है कि कदाचित अमेरिकी देशीयकृत नागरिक बनने के पश्चात् हमें कहने को तो वाक्–स्वतंत्रता मिल गया है, किन्तु वास्तव में हम किसी भी अमेरिकन व्यवस्था पर आलोचनात्मक शब्दोच्चारण करने का अधिकार ही खो बैठे हैं। ऐसे जन्म–जात अमेरिकन नागरिक को कैसे समझाएं कि हम अमेरिका वित्तीय तथा व्यावसायिक समृद्धि की खोज में आये हैं, किन्तु इस आकांक्षा की पूर्ति के विनिमय में हमने अपने माता–पिता, भाई–बहन पथा परिवार और समाज के अमूल्य संबंधों का संवेदनशील बलिदान दिया है। कभी–कभी कटाक्ष–युक्त प्रश्न सुनने को मिलता है, ''तुम कितने समय से यहाँ हो और कब वापस जाने की सोचते हो? यह देश, यह समाज तो हमारे पूर्वजों ने बनाया है। अब तो अत्यधिक संख्या में विदेशी यहाँ आ कर अपनी समृद्धि के स्वप्न साकार कर रहे हैं; अपनी अल्प–संख्यक वरीयता का हर प्रकार से लाभ उठाते हैं, चाहे व्यवसाय हो, अल्प–मूल्य आवास हो, या फिर शिक्षा एवं चिकित्सा संबंधी सुविधाएँ हों। अपने सेवा–निवृत्त अथवा निठल्ले, अल्प–शिक्षित रक्त–सम्बंधियों को भी प्रायोजन के अंतर्गत यहाँ बुला लेते हैं, जो हमारे सामाजिक–सुरक्षा संबंधी बजट पर भार बनते जा रहे है।'' प्रत्युत्तर की उत्कंठा होती है कि, ''सत्य तो यह है कि तुम और तुम्हारे अग्रजों ने केवल वही किया है, जो हम भी यहाँ पिछले कई दशकों से कर रहे हैं। यह समृद्ध देश आप्रवासियों द्वारा निर्मित है, जो समय के साथ यहाँ के नव–निर्मित समाज में विघटित होते गए और उन्हीं के तुम्हारे सरीखे अनुज या संतान केवल अपने को देश–निर्माता और वास्तविक या मौलिक अमेरिकन समझने लगे।''

कई मित्रों द्वारा वर्णित इन तथ्यों, तर्कों और अनुभूतियों से रवि भलीभांति परिचित था। फिर भी उसके विचार से अमेरिका में रहना भारत की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था से बहुत उत्तम था। उसने देखा, भारत में उसके घर में पानी तथा विद्युत, अनियमित रूप से केवल कुछ ही घंटों के लिये उपलब्ध थी। अतः घर में नल तथा लालटेन इत्यादि का प्रबंध अनिवार्य था। उसके पिताश्री को शीघ्र अस्पताल में भरती करने की आवश्यकता थी। इसी के लिए उसे काफी भागदौड़ करनी पड़ी और कई पुराने मित्रों की सहायता लेनी पड़ी। अंततः चार सप्ताह पश्चात् उनका देहांत हो गया और दाह–संस्कार के लिए शव को गंगा घाट लाया गया। यहाँ रवि को अपने धार्मिक अनुष्ठानों के अधोपतन का नग्न रूप देखने को मिला। धन–लोलुप अंतिम–संस्कार–प्रबंधक अपूर्ण से जले शव गंगा में प्रवाहित कर रहे थे। शोक–संतप्त परिवार की व्यथित भावनाओं का लाभ उठाकर, काठ, तथा अन्य हवन एवं दाह–सामग्री, दाह–शुल्क और दाह–व्यय इत्यादि का अनुचित मोलभाव कर रहे थे। ऐसा लगता था कि तथा–कथित पुजारी निर्दयी, पाषाण–हृदयी, अशिष्ट तथा निपट असंवेदनशील हो गये थे।

रीति–रिवाज के अनुसार अंत्येष्टि–कर्म के पश्चात् वह अपनी माताश्री को साथ लेकर सानफ्रांसिस्को लौटा।

आदरणीय संपादक जी,

लोकवाणी

जुलाई 15 का अंक मिला। अंक में साहित्य के विशिष्ठ हिमांशु जोशी की कहानी के साथ शरत् बाबू का संस्मरण भी पढ़ने को मिला।साथ ही डॉ० आनन्द प्रकाश और बिजय कुमार सप्पति की कहानी के साथ शिवानीजार्ज की समीक्षा–अज्ञेय की औपन्यासिक विहंगम–दृष्टि को पढ़कर अच्छा लगा। आपने अपने आलेख– ''हमारी संस्कृत और संस्कृति'' के वैदिक विन्यास के साथ–साथ धर्म के अन्तर्गत सम्प्रदाय यूँ कहें हिन्दु धर्म से निकले कई पंथ बौध, जैन और फिर पश्चात् का प्रभाव जिसने संस्कृति को बदलता चला गया का जिक्र कर आज की पीढ़ी के ज्ञान मीमांसा को बढ़ाने का अच्छा प्रयास किया है।

इस अंक का संपादकीय भी साहित्य की अवधारनाओं को लेकर लिखा है आपने ये पंक्तियाँ– ''नदी की संपति यदि जल है तो साहित्य की संपति भाव या विचार है। साहित्य समाज के विचारों का लेखा–जोखा है।'' यदि इसे आलोचना की कसौटी पर तौलूँ तो साहित्य की पूर्व कालिक कहे परिभाषाओं में यह वर्त्तमान की नई परिभाषा बनती दिखती है।सोच का विराक न हो तो नये–नये शब्द आते ही है एसा आपके सम्पादकीय से दिखता है।एक बात कहने से नहीं चूकुंगा कि कभी–कभी विरह में भी गुलाबीपन दिखता है जैसा कि आपने अपनी कविता तुम्हारी याद में लिखा है– ''सौंधी महक सी मिट्टी की तुम गुनगुनाती हो मेरे अन्तर में, तुम्हारे स्पर्श को आकार देता मलय पवन का झोंका।''

सच तो यह है कि पत्रिका में प्रवाह तभी बनता है जब रनचाएँ बोलती है और इस अंक की लघुकथा हो, कविता हो, ग़ज़ल हो मनजीत शर्मा ..... की कहानी या रविशंकर सिंह का यात्रावृतान्त सभी पठनीय हैं और जो पठनीय का संकलन हो वह एक अच्छी पत्रिका है।शेष शुभ!

डॉ० अनुज प्रभात
दीन दयाल चौक, फारविसगंज, अररिया (बिहार)

प्रिय जयसवाल जी

सप्रेम अभिवादन ''संभाव्य'' का अप्रैल 2015 अंक मिला और उत्सुकता वश सभी रचनाएँ एक के बाद एक पढ़ता चला गया सचमुच आपका यह प्रयास अत्यंत सफल है वैसे तो सभी रचनाएँ उच्च स्तर की और सराहनीय है पर विशेष प्रभावित किया ''पहली खेप'' और ''वो तिलचट्टे'' जिसमें नारी का ज़माने के गलत और अपमानजनक व्यवहार के विरुद्ध उनका जायज़ गुस्सा सफल झलकता है और रोष इस कदर कि ज्वालामुखी कभी भी फट सकता है। इनके लेखकों को मेरी बधाई शुभ कामना और आशीर्वाद।

अंत में मैं ''संभाव्य'' कि गगनचुम्बी सफलता की कामना करता हूँ।

अखिलेश कुमार श्रीवास्तव
मो०–09321497415

आदरणीय संपादक महोदय
संभाव्य
हार्दिक अभिवादन

आपके द्वारा प्रेषित अप्रैल 2015 के संभाव्य की एक प्रति प्राप्त हुई। हृदय से आभार। समूचे अंक में आलेख, गज़ल, कविता, कहानी, लघुकथा बहुत आकर्षक एवं ज्ञानवर्धक लगा। बधाई हो। पत्रिका की संपादकीय बड़ी महत्वपूर्ण रही क्योंकि यही तो पत्रिका की जान होती है और पाठकों को एक सूत्र में पिरो कर ज्ञान का दर्पण दिखाती है।संभाव्य निश्चित ही पत्रिका को उच्च साहित्यक शिखर पर लेकर जायेगी।हार्दिक साधुवाद। इस स्तुत्य प्रकाशन में हम सभी शुधी रचनाकार, पाठकगण आपके साथ हैं। पुनः आभार अभिवादन सहित।

शैलेन्द्र कुमार चतुर्वेदी
चौबान मुहल्ला, फिरोजाबाद (उ० प्र०)

आदरणीय संपादक महोदय!

आकर्षक कलेवर और समृद्ध सामग्री से परिपूर्ण प्रिय पत्रिका ''संभाव्य'' का अप्रैल 2015 अंक मिला।पत्रिका में सामग्री की विविधता जहां प्रभावित करती वहीं यह आपकी संचयन क्षमता को भी प्रतिस्थापित करती है। देश–विदेश के कोने–कोने से रचनाकारों का जुड़ाव संभाव्य के सार्वभौमिक स्वरूप एवं इसके सार्वजनीन होने का प्रमाण है। पत्रिका का विकास देख मन प्रफुल्लित होता है। आदरणीय संस्थापक महोदय ने जिस विहंसते विश्वग्राम की कल्पना की है निश्चित ही इस मिशन में हम सब उनके साथ हैं।

श्री देवनाथ द्विवेदी की ग़ज़लें हमारी सभ्यता और संस्कृति से अंकुरित हैं खुशी होती है ऐसे रचनाकार सुदूर कनाडा में भी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़े हुए हैं। डॉ० सुजाता चौधरी की कहानी ''भरोसा टूटने का दुःख'' एवं सीमा असीम की कहानी ''एक सर्द दिन तुम्हारे बिन'' सामयिक सन्दर्भों में प्रभावित करती हैं। शिल्प और भाषा के स्तर से भी दोनों कथाकार समृद्ध हैं, साधुवाद। सहजता और मौलिकता से परिपूर्ण आंचलिकता का सुख आज शहरी जीवन में कम ही मिलता है और जब इस सौन्दर्य से हम ''पहली खेप'' जैसी कहानियों में रूबरू होते हैं तो मानसिक सुख मिलता है।डॉ० प्रेमचंद पाण्डेय को इस कथा हेतु बधाई। आज ऐसी ही प्रयोगधर्मी और साहसिक कृतियों की अपेक्षा है जो समाज को एक दिशा प्रदान कर सकें। रीता वर्मा एवं विजय सप्पति की लघुकथाएं पसंद आयीं। डॉ० आनंद प्रकाश, श्री छोटेलाल गुप्ता, प्रो० मृत्युंजय उपाध्याय के आलेख, श्री दयानंद जायसवाल द्वारा डॉ० सुजाता की पुस्तक की समीक्षा इस अंक की उपलब्धियां हैं। आशा पाण्डेय ओझा, डॉ० अश्विनी एवं रविशंकर की कवितायें भी अच्छी लगी। प्राप्त पुस्तकें, लोकवाणी एवं अलग–अलग पन्नों पर उपयोगी व्यक्तित्व परिचय जैसे स्तम्भ रूचिकर और ज्ञानवर्धक हैं इन्हें जारी रखें। संभाव्य दिवस सम्मान की विस्तृत सूची प्रकाशित कर हमें सम्मानित होने वाले रचनाकारों को बधाई देने का अवसर प्रदान किया, आभार। निश्चित ही संभाव्य ने अपने प्रकाशन के अल्प समय में राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर समकालीन साहित्य के लिए मानक स्थापित किया है। सम्पूर्ण संभाव्य परिवार को शुभकामनाएं सहित।

अभिनव अरूण
वाराणसी

आदरणीय संपादक महोदय
संभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
नमस्कार

आपकी पत्रिका मिली, हिन्दी के लिए समर्पित पत्रिका संभाव्य मुझ तक पहुँची, आपको बहुत–बहुत धन्यवाद पत्रिका का उद्देश्य कितना श्रेष्ठ है कि 'हम सिर्फ एक इन्सान बने' आपने संभाव्य से जुड़ने का मौका दिया इसके लिए हम आभारी हैं, मैं पत्रिका के लिए अपना दो मौलिक गीत भेज रही हूँ। कृपया स्थान देकर अनुगृहीत करें।

शशिकला झा
पो०–वीरपुर, जिला–सुपौल (बिहार)
मो०–9471658607

आदरणीय संपादक महोदय

संभाव्य का अप्रैल अंक देखने को मिला। बड़ा अच्छा लगा।तमाम पठनीय सामग्रियों से भरपूर प्रगतिशील पत्रिका।इसके निर्बाध निरंतर असर होने की शुभकामनाएँ मेरी ओर से भी ग्रहण करें।

मंजरी पाण्डेय
केन्द्रीय विद्यालय, वाराणसी

संभाव्य
प्रिंटिंग प्रेस, भागलपुर